# खरतरमतोत्पत्ति

१

३ भाग ४

२

ज्ञानसुन्दर

# क्या ?

मैंने खरतरों के अत्याचारों के सामने पन्द्रह वर्ष तक खूब ही धैर्य रक्खा पर आखिर खरतरों ने मेरे धैर्य्य को जबरन् तोड़ ही डाला। शायद इसमें भी खरतरों ने अपनी विजय समझी होगी। क्योंकि खरतरों ने मेरे लिये तो जो कुछ भला बुरा लिखा, उसको मैंने अपना कर्त्तव्य समझ कर सहन कर लिया पर मेरी इस सहनशीलता ने खरतरों का होसला यहाँ तक बढ़ा दिया कि वे लोग परमोपकारी पूर्वाचार्य्यों की ओर भी अपने हाथों को बढ़ाने लग गये जैसे कि—

"तुम्हारे रत्नप्रभसूरि किस गटर में घुस गये थे ?"

"उनके बनाये अठारह गौत्र क्या करते थे ?"

"न तो रत्नप्रभ आचार्य हुये और न रत्नप्रभ ने ओसवाल ही बनाये थे ?"

"ओसियों में सवालक्ष श्रावक जिनदत्तसूरि ने बनाये थे ?"

"उन पतित आचार वालों ने अपना कँवला-ढीला गच्छ बना लिया" इत्यादि ऐसी अनेक बातें लिख दी हैं।

भला ! जिनकी नसों में अपने पूर्वजों का थोड़ा भी खून है वह ऐसी अपमानित बातों को कैसे सहन कर सकते हैं ? केवल एक मेरे ही क्यों पर इन खरतरों की पूर्वोक्त अघटित बातों से समस्त जैनसमाज के हृदय को आघात पहुँच जाना एक स्वाभाविक ही है। अतः खरतरों की पूर्वोक्त मिथ्या बातों से गलत फहमी न फैलजाय अर्थात् इन झूठी बातों से भद्रिक लोग अपना अहित न कर डालें इसलिये मुझे लाचार होकर लेखनी हाथ में लेनी पड़ी है।

'ज्ञानसुन्दर'

जैन इतिहास ज्ञानभानुकिरण नं० २२-२३-२४-२५

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर पादपद्मेभ्यो नमः

# खरतरमतोत्पत्ति-भाग १-२-३-४


लेखक

इतिहासप्रेमी-मुनिश्रीज्ञानसुन्दरजी महाराज



प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु० फलौदी ( मारवाड़ )

ओसवाल संवत् २३९६

वीर संवत् २४६६ [ वि० सं० १९९६ ] ई० सं० १९३९

प्रथमावृत्ति ५००

मूल्य दो आना

# शास्त्रार्थ में खरतरों का पराजय

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी का जिक्र है कि अजमेर में राजा बीसलदेव चौहान राज करता था। उस समय एक ओर से तो उपकेशगच्छीय वाचनाचार्य्य पद्मप्रभ का शुभागमन अजमेर में हुआ। आप व्याकरण, न्याय, तर्क, छन्द, काव्य, अलंकार और जैनागमों के प्रखर पण्डित और धुरन्धर विद्वान थे। आपके विद्वतापूर्ण व्याख्यानों से बड़े २ राजा एवं पंडित मन्त्रमुग्ध बन जाते थे। यही कारण है कि आपकी विद्वत्ता की सौरभ सर्वत्र फैली हुई थी। दूसरी ओर से खरतराचार्य्य जिनपतिसूरि का पदार्पण अजमेर में हुआ, आप वाचनाचार्य पद्मप्रभ की प्रशंसा को सहन नहीं कर सके। भला अभिमान के पुतले योग्यता न होने पर भी आप अपने को सर्वोपरि समझने वाले दूसरों की बढ़ती को कब देख सकते हैं? उक्त इन दोनों का शास्त्रार्थ राजा बीसलदेव की सभा के पंडितों के समक्ष हुआ। जिसमें वाचनाचार्य्य पद्मप्रभ द्वारा जिनपति बुरी तरह से परास्त हुआ जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। +

+ तदा खरतराचार्यैः, श्री जिनपति सूरिभिः।
सार्द्धं विवादो विदधे, गुरु काव्याष्टकच्छले॥
श्रीमत्यजयमेर्वाख्ये, दुर्गे बीसलभूपतेः।
सभायां निर्जितायेन, श्रीजिनपतिसूरयः॥

उपकेशगच्छचरित्र

अजमेर के राजा
वीसलदेव चौहान
की
राजसभा में
**उपकेशगच्छीय**
वाचनाचार्य पद्मप्रभ
द्वारा
खरतराचार्य्यजिनपतिसूरि
**परास्त**
हो कर
क्षमायाचना
कर रहा है।

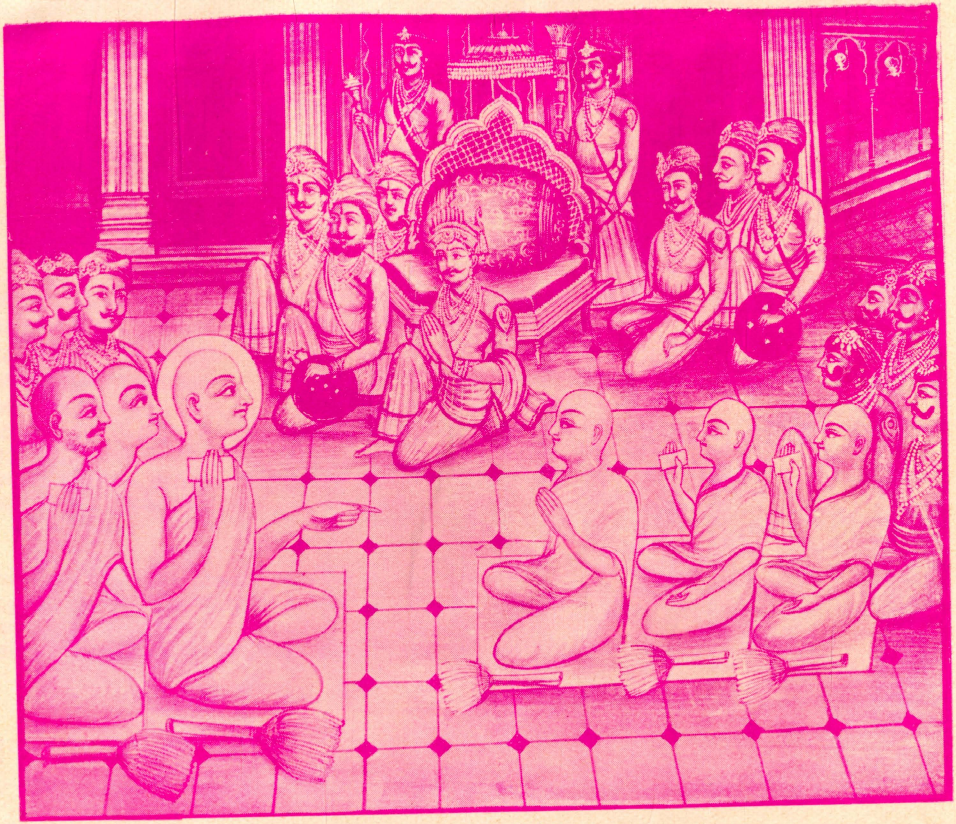

वि० सं० १३९३ का लिखा हुआ उपकेशगच्छ चारित्र की हस्तलिखित प्रति का चित्र

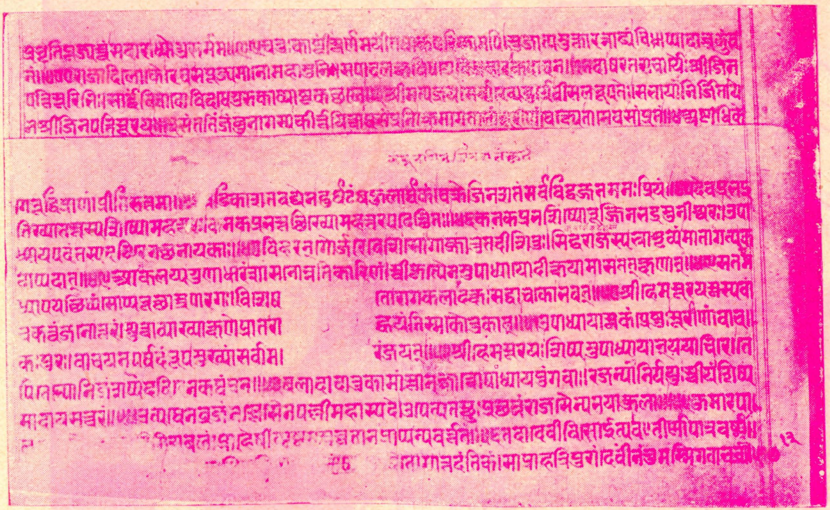

इसके अन्दर के २ श्लोक पृष्ठ २ पर दिये हैं।

इस पुरानी बात को चित्र द्वारा प्रकाशित करवाने की इस समय अवश्यकता नहीं थी पर हमारे खरतर भाइयों ने इस प्रकार की प्रेरणा की कि जिससे लाचार होकर इस कार्य में प्रवृति करनी पड़ी है जिसके जिम्मेदार हमारे खरतर भाई ही हैं।

इस कलंक को छिपाने के लिए आधुनिक खरतरों ने जिनेश्वरसूरि का पाटण की राजसभा में शास्त्रार्थ होने का कल्पित ढाँचा तैयार कर स्वकीय ग्रंथों में ग्रन्थित कर दिया है। परन्तु प्राचीन प्रमाणों से यह साबित होता है कि न तो जिनेश्वरसूरि कभी राजसभा में गये थे न किसी चैत्यवासी के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ था और न राजा दुर्लभ ने खरतर विरुद ही दिया था। इस विषय के लिये खरतर मतोत्पत्ति भाग १-२-३-४ आपके करकमलों में विद्यमान है जिसको पढ़ कर आप अच्छी तरह से निर्णय कर सकते हैं।

कहा जाता है कि 'हारा ज्वारी दूणो खेले' इस युक्ति को चरितार्थ करते हुए खरतरों ने जिनेश्वरसूरि का कल्पित चित्र बना कर उसके नीचे लेख लिख दिया है कि 'उपकेशगच्छीय चैत्यवासियों को परास्त किया' भला कभी जिनेश्वरसूरि आ कर खरतरों को पूछें कि अरे भक्तो ! मैं कब पाटण की राजसभा में गया था और कब उपकेशगच्छीय चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ किया था और कब राजा दुर्लभ ने मुझे खरतर विरुद् दिया था, तुमने यह मेरे पर झूठा आक्षेप क्यों लगाया है? उपकेशगच्छ के आचार्यों को तो मैं पूज्य भाव से मानता हूँ क्योंकि उन्होंने लाखों करोड़ों आचार पतित क्षत्रियों को जैनधर्म में दीक्षित कर 'महाजन-सघ' की स्थापना की थी। उन्हीं ओसवाल, पोरवाल और श्रीमालों ने

जैनधर्म को जीवित रक्खा है। और तुम्हारी भी सहायता करते हैं। तथा उपकेशगच्छीय आचार्य यक्षदेवसूरि ने आर्य वज्रसेन के ४ शिष्यों को ज्ञानदान और शिष्यदान दे कर उनके चन्द्र, नागेन्द्र विद्याधर और निवृत्ति कुल स्थापन किये जिसमें चन्द्रकुल में मैं भी हूँ तो उनका उपकार कैसे भूला जाय। तथा उपकेशगच्छीय देवगुप्तसूरि ने देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को दो पूर्व का ज्ञान पढ़ा कर क्षमाश्रमण पद दिया था कि जिन्होंने आगमों को पुस्तकारूढ़ कर जैन समाज पर महान उपकार किया है, इतना ही क्यों पर मैं खुद उपकेशगच्छाचार्यों के पास पढ़ा हूँ। अतः उन महा उपकारी पुरुषों के उपकार के बदले मेरे नाम से इस प्रकार मिथ्या आक्षेप करना यह संसार-वृद्धि का ही कारण है इत्यादि। इसका आधुनिक खरतर क्या उत्तर दे सकते हैं ?

शर्म ! शर्म !! महाशर्म !!! कि खरतरों ने अपना कलंक छिपाने के लिए एक महान उपकारी पुरुषों के ऊपर मिथ्या दोषारोपण कर दिया है, परन्तु आज बीसवीं शताब्दी और ऐतिहासिक युग में ऐसे कल्पित चित्र और मिथ्या लेखों की फूटी कौड़ी जितनी भी कीमत नहीं है।

खरतरों ! अब भी समय है कि ऐसे चित्र और मिथ्या लेखों को शीघ्र हटा दो वरन् तुम्हारे हक़ में ठीक न होगा इस को अच्छी तरह सोच लेना चाहिए।

केसरीचन्द-चोरड़िया

# विषय अनुक्रमणिका

## भाग पहिला


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| १—जैन धर्म आज्ञा प्रधान धर्म है | १ |
| २—खरतरों की उत्सूत्र प्ररूपना | २ |
| ३—पाटण के राजाओं की वंशावली | ४ |
| ४—जावलीपुर में जिनेश्वरसूरि | ६ |
| ५—जैनाचार्य्यों को मिले हुये विरुद | ८ |
| ६—अभयदेवसूरिकृत स्थानायांग आदि सूत्रों की टीका | ९ |
| ७—जिनेश्वरसूरि आदि चन्द्रकुल के थे | १३ |
| ८—रुद्रापालीशाखा के आचार्य | १४ |
| ९—प्रमाणिक शिलालेख | १६ |
| १०—खरतरगच्छ मंडन जिनदत्तसूरि | २० |
| ११—सं० ११४७ का जाली शिलालेख | २१ |
| १२—पल्ह कवि की षट्पदी | २४ |
| १३—कँवला खरतर शब्द की उत्पत्ति | २६ |


## भाग दूसरा


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| १—जिनेश्वरसूरि का पाटण जाना | १ |
| २—जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किस की सभा में | ३ |
| ३—जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किस के साथ | ४ |

४—जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का विषय ५
५—जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय ५
६—जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद ६
७—क्या जिनेश्वरसूरि के पूर्व भी खरतर थे? ७
८—चैत्यवासियों का परिचय ९
९—चैत्तवासियों की विशेषता १६
१०—प्रभाविक चरित्र में जिनेश्वरसूरि १८
११—दर्शन सप्ततिका में जिनेश्वरसूरि २६
१२—जिनवल्लभीय प्रशस्ति में जिनेश्वसूरि ३१
१३—ऋषभदेव चरित्र में जिनेश्वरसूरि ३२
१४—मुनिसुव्रत चारित्र में जिनेश्वरसूरि ३३
१५—आबू मन्दिर का शिलालेख ३४
१६—संघपट्टक की टीका में जिनेश्वरसूरि ३५
१७—वीर चारित्र में जिनेश्वरसूरि ३८
१८—गणधर सार्द्धशतक में जिनेश्वरसूरि ३९
१९—धन्नाशालिभद्र चारित्र में जिनेश्वरसूरि ४०
२०—द्वादश कुलक में जिनेश्वरसूरि ४०
२१—श्रावक धर्म प्रकरण में जिनेश्वरसूरि ४०
२२—आचार दिनकर की टीका में जिनेश्वरसूरि ४२
२३—आचारांगसूत्र की दीपका ( जिनहंससूरि ) ४३
२४—जैसलमेर का शिलालेख १-२ ४४
२५—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह ख. प. ४४
२६—खरतर पट्टावली ४५
२७—*राजा दुर्लभ के राज का समय* ४८

## तीसरा भाग

१—जिनवल्लभ का परिचय (गणधर सार्द्धशतक) २
२—जिन वल्लभ की दीक्षा और गुरु से कलह ३
३—जिनवल्लभ चैत्यवासी और उनका विरोध ४
४—वल्लभ ने किसी संविग्न के पास दीक्षा नहीं ली थी ५
५—वल्लभ ने छट्ठे कल्याणक की उत्सूत्र प्ररूपना की ७
६—वल्लभ ने छट्ठा कल्याणक प्रगट किया ११
७—वल्लभ ने कंधा ठोक कर छट्ठा कल्याणक प्रगट किया १२
८—ऋषभदेव के छः नक्षत्र १३
९—तीर्थंकर का उग्रकुलादि में जन्म के विषय १४
१०—मरिचि का मद से नीच गौत्रापार्जन करना १५
११—हरिभद्रसूरि के पंचासक में ५ कल्याणक १६
१२—अभयदेवसूरि की टीका में ५ कल्याणक १७
१३—वल्लभ को संघ बाहर की सजा १८
१४—देवभद्राचार्य्य का अन्याय १९
१५—वल्लभ के नये मत की वंशावली २०
१६—सोमचन्द्र से जिनदत्तसूरि २१
१७—जिनेश्वरसूरि २३
१८—जैसलमेर की सं. ११४७ की मूर्ति २४
१९—खरतरों के झूठ लिखने का सिद्धान्त २४
२०—जिनदत्त ने पाटण में स्त्रीजिन पूजा निषेध किया २५
२१—जावलीपुर के संघ का कर्त्तव्य २७
२२—जिनदत्तसूरि से खरतर शब्द २८
२३—जिनदत्तसूरि का लिखा हुआ कुलक ग्रन्थ २९

२४—जैतारन की मूर्तियों का शिलालेख ३०
२५—मत का चलना और उसे मानना
२६—दादावाड़ी मूर्तियां और पादुकायें

## भाग चौथा

| विषय | पृष्ट |
|---|---|
| १—खरतरमत | १ |
| २—नवकारमंत्र | १ |
| ३—स्थापना | २ |
| ४—सामायिक | २ |
| ५—पौषध | ३ |
| ६—प्रतिक्रमण | ५ |
| ७—असठ आचरण | ७ |
| ८—कल्याणक | ७ |
| ९—प्रभुपूजा | ८ |
| १०—तिथि क्षय वृद्धि | ९ |
| ११—पर्व | १० |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| १२—प्रत्याख्यान | १२ |
| १३—भाक्ष्याभक्ष्य | १३ |
| १४—श्रावक प्रतिमा | १३ |
| १५—मासकल्प विहार | १४ |
| १६—उपधान | १४ |
| १७—आंविल | १४ |
| १८—वल्लभसूरि | १४ |
| १९—चैत्यवंदन | १५ |
| २०—और भी | १५ |
| २१—खरतर मत | १६ |
| २२—पट्टावलियां | १७ |

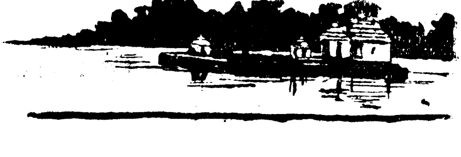

श्रीजैन इतिहास ज्ञान भानु किरण नं० २२

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर पादपद्मेभ्यो नमः

# खर-तरमतोत्पत्ति-भाग पहिला

लेखक

इतिहासप्रेमी-मुनिश्रीज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु० फलौदी ( मारवाड़ )

ओसवाल संवत् २३९६

वीर संवत् २४६६ [ वि० सं० १९९६ ] ई० सं० १९३९

प्रथमावृत्ति ५००

मूल्य दो आना

# क्या ?

अजमेर शहर के बाहर एक दादा-बाड़ी है जिसमें जिनदत्त-सूरिजी की छत्री है उस छत्री के गुम्बज में अभी थोड़े समय से कुछ चित्र बनवाये गये हैं जिसमें एक चित्र में एक राजसभा में परस्पर साधुओं के शास्त्रार्थ का दृश्य दिखलाया है। उस चित्र के नीचे एक लेख भी है उसमें लिखा है कि:—

**"अणहिलपुर पट्टन में दुर्लभ राजा की राजसभा में जैन शासन शृङ्गार जिनेश्वरसूरीश्वरजी महाराज ने उपकेशगच्छीय चैत्यवासियों को परास्त कर विक्रम सम्वत् १०८० में खरतर विरुद प्राप्त किया।"**

उपरोक्त लेख यों तो बिल्कुल गलत एवं कल्पना मात्र ही है उसमें भी उपकेशगच्छीय चैत्यवासी शब्द तो प्रत्येक जैन को आघात पहुँचाने वाला है क्योंकि एक शान्ति-प्रिय ज्येष्ठ गच्छ का इस प्रकार अपमान करना सरासर अन्याय है। अतः अजमेर के खर-तरों को मैंने सूचना दी थी कि या तो इस बात को प्रमाणिक प्रमाणों द्वारा साबित करदें कि जिनेश्वरसूरि और उपकेशगच्छीय चैत्यवासियों के शास्त्रार्थ हुआ था या 'उपकेशगच्छीय' इन शब्दों को हटा दें वरन् इस त्यता क लिये मुझे प्रयत्न करना होगा। इस मेरी सूचना को कई दिन गुजर गये पर अजमेर के खर-तरों ने इस ओर लक्ष तक भी नहीं दिया अतः मुझे इस किताब को लिखने की आवश्यकता हुई जो आपके कर कमलों में विद्यमान है। जिसको आद्योपान्त पढ़ने से आपको रोशन होजायगा कि विघ्न संतोषियों ने एक मिथ्या लेख लिख कर जैन समाज के दिल को किस प्रकार आघात पहुँचाया है। अब भी समय है उस शब्द को हटा कर इस मामले को यहीं शान्त कर दें—

'लेखक'

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नमः

# खरतर-मतोत्पत्ति-भाग पहिला

जैनधर्म आज्ञा प्रधान धर्म है। वीतराग की आज्ञा को शिरोधार्य करने वालों को ही जैन एवं सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। यदि वीतराग की आज्ञा के खिलाफ एक अक्षर मात्र भी न्यूनाधिक प्ररूपना करें तो उसको निन्हव, मिथ्यात्वी, उत्सूत्रभाषी कहा जाता है और जिन लोगों के प्रबल मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय होता है वही लोग उत्सूत्र प्ररूपना कर स्वयं अपने को तथा दूसरे अनेक जीवों को दीर्घसंसार के पात्र बना देते है।

भगवान् महावीरकी मौजूदगी में गोसाला जमाली आदिकोंने भगवान महावीर से खिलाफ होकर उत्सूत्र की प्ररूपना कर अपना नया मत चला दिया था इस पर भी तुर्रा यह है कि भगवान को झूठा बतला कर आप सच्चे बनने की उद्घोषना भी कर दी थी।

इसी प्रकार भगवान के निर्वाण के बाद भी कई उत्सूत्र प्ररूपक निन्हवों ने जन्म लेकर नये नये मत निकाल बिचारे भद्रिक जीवों को संसार में डुबाने का प्रयत्न किया था जिसमें खरतर-मत भी एक है। इस मत के आदि पुरुष ने तीर्थङ्कर गणधर और पूर्वाचार्यों की आज्ञा का भंग कर उत्सूत्र की प्ररूपना की थी जैसे:—

१—भगवान महावीर के पांच कल्याणक हुए ऐसे मूलसूत्र टीका वगैरह में उल्लेख मिलते हैं और उसको आचार्य अभयदेवसूरि तक सब जैनसमाज मानता भी आया था पर जिनबल्लभसूरि जो कुर्च्चपुरागच्छीय चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि का शिष्य था उसने वि० सं० ११६४ आश्विनकृष्णा त्रयोदशी के दिन चित्तौड़ के किल्ले पर भगवान महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररूपना करके अपना 'विधिमार्ग' नामक एक नया मत निकाला।

२—जैनधर्म में जैसे पुरुषों को जिनपूजा करने का अधिकार है वैसा ही स्त्रियों को जिनपूजा कर आत्म कल्याण करने का अधिकार है पर जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जिनदत्तसूरि ने वि० सं० १२०४ पाटणनगर में स्त्रियों को जिनपूजा करना निषेध कर उत्सूत्र की प्ररूपना की और जिनदत्तसूरि की प्रकृति से जिनवल्लभसूरि के 'विधिमार्ग' का नाम खरतरमत हुआ।

३—श्रावक पर्व के दिन तथा पर्व के अलावा जब कभी अवकाश मिले उसी दिन पौषध व्रत कर सकता है और भगवती सूत्र में राजा उदाई तथा विपाकसूत्र में सुबाहुकुमार ने पर्व के अलावा दिनों में भी पौषधव्रत किया था पर खरतरों ने मिथ्यात्वोदय के कारण पर्व के अलावा दिनों में पौषध करना निषेध करके उत्सूत्र की प्ररूपना कर डाली एवं अन्तराय कर्मोपार्जन किया।

४—श्रावक जैसे तिविहार उपवास कर पौषध करता है वैसे एकासना करके भी पौषध कर सकता है और भगवतीसूत्र में पोक्खली आदि बहुत श्रावकों ने इस प्रकार पौषध किया भी था पर खरतरों ने एकासना एवं आंबिल वाले को पौषध व्रत करने का निषेध करके उत्सूत्र की प्ररूपना कर डाली।

५ – जब साधु को दीक्षा दी जाती है तब नांद ( तीगड़े पर प्रभु प्रतिमा स्थापित करना ) मांड कर विधि-विधान यानि तीन प्रदक्षिणा के साथ तीन बार जावजीव के लिये करेमिभंते सामायियं उच्चराई जाती है पर खरतरों ने श्रावक के इतर काल की सामायिक को भी तीन बार उच्चारने की उत्सूत्र प्ररूपना कर डाली।

६—जैनागमों का फरमान है कि श्रावक सामायिक करे तो पहले क्षेत्र शुद्धि के लिये इरियावही करके ही सामायिक करे पर खरतरों ने पहले सामायिक दंडक उच्चरना बाद में इरियावही करने की उत्सूत्र प्ररूपना कर डाली।

७—जैनागमों में साधु के लिये नौकल्पी विहार का अधिकार है खरतरों ने उसका भी निषेध कर दिया।

इत्यादि वीतराग की आज्ञा का भंग कर कई प्रकार की उत्सूत्र प्ररूपना कर डाली जिसको सब गच्छों वालों ने उत्सूत्र प्ररूपना मानी है इतना ही क्यों पर भगवान महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररूपना के कारण जिनवल्लभसूरि को तथा स्त्री जिनपूजा निषेध के कारण जिनदत्तसूरि को श्रीसंघ ने संघबाहर भी कर दिया था पर कहा जाता है कि 'हारिया जुवारी दूणों खेले' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए उन्होंने और भी कई मिथ्या प्ररूपना करदी तथा आधुनिक खरतरों ने खरतर-मत की उत्पत्ति का आदि पुरुष जिनेश्वरसूरि को बतलाने के लिये एक कल्पना का कलेवर तैयार किया है कि वि० सं० १०८० में जिनेश्वरसूरि पाटण गयेथे वहां राजा दुर्लभ की राज-सभा में चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ किया जिसमें जिनेश्वरसूरि खरा रहा जिससे राजा दुर्लभ ने उनको खरतर विरुद दिया और हार जाने वाले को

कँवला कहा इत्यादि पर खरतरों के किसी प्राचीन ग्रंथों में इस बात की गंध तक भी नहीं है और न किसी प्रमाण से यह वात सिद्ध भी होती है क्योंकि सबसे पहले तो वि० सं० १०८० में पाटण में राजा दुर्लभ का राज ही नहीं था इतिहास की शोध खोज से यह निश्चय हो चुका है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि० सं० १०६६ से १०७८ तक रहा था जिसके लिये मैं पाटण के राजाओं की वंशावली यहां उद्धृत कर देता हूँ।

पाटण नगर बनराज चावड़ा ने वि. सं. ८०२ में बसाया था बाद वहां पर कौन कौन राजा कितने २ वर्ष राज किया जैसे :—

## चावड़ा-वंश के राजा

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १—वनराज चावड़ा, | राज्य काल— | वि० सं० | ८०२ से ८६२ तक | कुल | ६० |
| २—योगराज | ,, | ,, | ८६२ से ८९७ तक | ,, | ३५ |
| ३—खेमराज | ,, | ,, | ८९७ से ९२२ तक | ,, | २५ |
| ४—भूवड़ | ,, | ,, | ९२२ से ९५१ तक | ,, | २९ |
| ५—वैरीसिंह | ,, | ,, | ९५१ से ९७६ तक | ,, | २५ |
| ६—रत्नादित्य | ,, | ,, | ९७६ से ९९१ तक | ,, | १५ |
| ७—सामन्तसिंह | ,, | ,, | ९९१ से ९९८ तक | ,, | ७ |

इस तरह चावड़ा वंश के राजाओं ने १९६ वर्ष राज्य किया, अनन्तर सोलंकी वंश का राज हुआ वह क्रम इस प्रकार है:—

## सोलंकी वंश के राजा

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ८—मूलराज सोलंकी | राज्य काल | वि०सं० | ९९८ से १०५३ तक | कुल ५५ वर्ष |
| ९—चामुण्डराय | ,, | ,, | १०५३से१०६६ तक | १३ वर्ष |
| १०—वल्लभराज | ,, | ,, | १०६६से १०६६॥ तक | केवल६ मास |
| ११—दुर्लभराज | ,, | ,, | १०६६॥से १०७८ तक | ११॥ वर्ष |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १२—भीमराज | ,, | ,, | ,, | १०७८ से ११२० तक ४२ | वर्ष |
| १३—करणराज | ,, | ,, | ,, | ११२० से ११५० तक ३० | ,, |
| १४—जयसिंह | ,, | ,, | ,, | ११५० से ११९९ तक ४९ | ,, |
| १५—कुमारपाल | ,, | ,, | ,, | ११९९ से १२३० तक ३१ | ,, |
| १६—अजयपाल | ,, | ,, | ,, | १२३० से १२६६ तक ३६ | ,, |
| १७—मूलराज | ,, | ,, | ,, | १२६६ से १२७४ तक ८ | ,, |

सोलंकी वंश के राजाओं ने २७६ वर्ष तक राज्य किया, बाद में पाटण का राज बाघल-बंश के हस्तगत हुआ। उन्होंने विक्रम सं० १३५८ तक कुल ८४ वर्ष राज्य किया, फिर पाटण की प्रभुता आर्यों के हाथों से मुसलमानों के अधिकार में चली गई।

१—इसी प्रकार पं० गौरीशंकरजी ओझा ने स्वरचित सिरोही राज के इतिहास में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि० सं० १०६६ से १०७८ तक रहा बाद राजा भीम देव पाटण का राजा हुआ।

२—पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ ने भारतवर्ष का प्राचीन राजवंश नामक किताब में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज १०६६ से १०७८ तक रहा।

३—गुर्जरवन्श भूपावली में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि० सं० १०७८ तक रहा।

४—आचार्य मेरुतुंग रचित प्रबन्ध चिंतामणि नामक ग्रन्थ में भी लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि० सं० १०६६ से १०७८ तक रहा।

इत्यादि इस विषय के अनेक प्रमाण विद्यमान हैं पर ग्रंथ बढ़ जाने के भय से मैंने नमूने के तौर पर उपरोक्त प्रमाण लिखे

दिए हैं इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि० सं० १०६६ से १०७८ तक ही रहा था। तब राजा दुर्लभ की राजसभा में वि० सं० १०८० में जिनेश्वर सूरि का शास्त्रार्थ कैसे हुआ होगा? शायद पाटण का राजादुर्लभ मरकर भूत हुआ हो और वह दो वर्षों से लौट कर वापिस आकर राजसभा की हो और उसमें जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद दे गया हो तो खरतरों का कहना सत्य (।) हो सकता है पर इसमें भी प्रमाण की आवश्यकता तो रह ही जाती है।

अब जरा जिनेश्वरसूरि की तरफ देखिये कि खुद जिनेश्वर-सूरि क्या कहते हैं? जिनेश्वरसूरि खुद लिखते हैं कि मैं वि० सं० १०८० में जावलीपुर (जालौर) में ठहर कर आचार्य हरिभद्रसूरि के अष्टक ग्रन्थ पर टीका रच रहा था।

श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द देसाई जैन सहित्य नो संक्षिप्त इतिहास नामक पुस्तक के पृष्ठ २०८ पर लिखते हैं कि वि० सं० १०८० में जिनेश्वरसूरि जावलीपुर में रह कर आचार्य हरिभद्र-सूरि के अष्टकों पर वृत्ति रची और आपके गुरु भाई आचार्य बुद्धिसागरसूरि ने ७००० श्लोक प्रमाण वाली बुद्धिसागर नामक व्याकरण की रचना की थी।

इस प्रमाण से स्पष्ट पाया जाता है कि वि० सं० १०८० में जिनेश्वरसूरि पाटण में नहीं पर जावलीपुर में विराजते थे। शायद यह कहा जाय कि जावलीपुर से पाटण जाकर शास्त्रार्थ किया हो या पाटण में शास्त्रार्थ करके बाद जावलीपुर आये हो? पर यह दोनों बातें कल्पना मात्र ही हैं क्योंकि वि० सं० १०८० में जिनेश्वरसूरि जावलीपुर में ठहरे उस समय बुद्धिसा-

गरसूरि साथ में थे और उन्होंने ७००० श्लोक वाली व्याकरण की रचना वहाँ हो की थी ये कोई एक दो मास का काम नहीं था पर इस प्रकार व्याकरण का नया ग्रन्थ रचने में बहुत समय लगा होगा। दूसरा पाटण से जावलीपुर आना भी असंभव है कारण, जिस समयजिनेश्वरसूरि पाटण गये थे तो वहाँ चतुर्मास भी किया था अब खरतरों के लिये एक मार्ग हो सकता है कि जैसे दुर्लभराजा भूत होकर दो वर्षों के बाद खरतर विरुद देने को आने की कल्पना के साथ जिनेश्वरसूरि ने दो रूप बना कर आप जावलीपुर में रहे और दूसरे रूप को पाटण भेजने की कल्पना कर लें तो आकाशकुसुम की तरह खरतर विरुद मिलना साबित हो सकता है और इसके लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं रहेगी।

सारांश यह है कि न तो वि० सं० १०८० में पाटण में राजा दुर्लभ का राज था और न सं० १०८० में जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे और न खरतरों के किसी प्राचीन ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख ही मिलता हैं। इस हालत में जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ और खरतर विरुद की तो बात ही कहाँ रही ?

पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि प्रतिवादियों से शास्त्रार्थ कर एक नामांकित राजा से विरुद प्राप्त करना यह कोई साधारण बात नहीं है कि जिस विरुद को वे विजयिता स्वयं एवं उनकी सन्तान भूल जायं और बाद ३०० वर्षों से वह विरुद प्रकाश में आवे। देखिये जनाचार्य्यों ने जिन जिन राजा महाराजाओं से जो जो विरुद प्राप्त किये है वह उनके नाम के साथ उसी समय से प्रसिद्ध हो गये थे जैसे :—

१—बप्पभट्टसूरि को—वादी-कुञ्जर-केसरी बप्पभट्टसूरि ।
२—शान्तिसूरि को—वादीवेताल शान्तिसूरि ।
३—देवसूरि को—वादी-देवसूरि ।
४—धर्मघोषसूरि को—वादी चूड़ामणि धर्मघोषसूरि ।
५—अमरचन्द्रसूरि को—सिंहशिशुक अमरचन्द्रसूरि ।
६—आनन्दसूरि को—व्याघ्रशिशुक आनन्दसूरि ।
७—सिद्धसूरि को—गुरुचक्रवर्ति सिद्धसूरि ।
८—जगच्चन्द्रसूरि को—तपा जगचन्द्रसूरि ।
९—हेमचन्द्रसूरि को—कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि ।
१०—कक्कसूरि को—राजगुरु कक्कसूरि ।
११—विजयसिंहसूरि को—खड्गाचार्य विजयसिंहसूरि ।
१२—नेमिचन्द्रसूरि को सिद्धान्तचूड़ामणिनेमीचन्द्रसूरि—

इत्यादि अनेक जैनाचार्य्यों ने बड़े २ राजा महाराजाओं द्वारा विरुद प्राप्त किये थे जब जिनेश्वरसूरि के खरतर विरुद ने कौन सी गुफा में समाधि ले रखी थी कि खुद जिनेश्वरसूरि ने पंचलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र, निर्वाणलीलावती, कथाकोश, प्रमाण लक्षण, षट्स्थानप्रकरण, हरिभद्रसूरिकृत अष्टकों पर बृति, आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की इन ग्रन्थों का रचना काल वि० सं० १०८० से १०९५ तक का है जिसमें पाटण के शास्त्रार्थ एवं खरतर शब्द की गन्ध तक भी नहीं हैं ।

—जिनेश्वरसूरि के गुरुभाई बुद्धिसागरसूरि ने बुद्धिसागर व्याकरणादि कई ग्रन्थ लिखे पर उसमें इशारा मात्र नहीं किया कि जिनेश्वरसूरि ने वि० सं० १०८० में पाटण के दुर्लभराजा

की राजसभा में चैत्यवासियों से शास्त्रार्थ कर खरतर विरुद प्राप्त किया था।

—जिनेश्वरसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि हुये उन्होंने सुरसुन्दरी कथा आदि कई ग्रन्थों का निर्माण किया पर किसी स्थान पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद मिला था।

—जिनेश्वरसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि ने संवेगरंगशालादि कई ग्रन्थ बनाये उसमें भी खरतर शब्द की बू तक भी नहीं है।

—जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर अभयदेवसूरि हुये उन्होंने हरिभद्रसूरि के पंचासक पर टीका रची। जिनेश्वरसूरि रचित षट्स्थान प्रकरण पर भाष्य और कुलकादि कई ग्रन्थों की रचना की पर किसी स्थान पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि ने वि० सं० १०८० में पाटण के दुर्लभराजा की राजसभा में चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ कर खरतर विरुद प्राप्त किया था। इतना ही क्यों पर उन्होंने तो अपनी रचित टीकाओं में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि जिनेश्वरसूरि चान्द्रकुल में थे। देखिये अभयदेवसूरि कृत श्रीस्थानायांगसूत्र की टीका।

*"तच्चंद्रकुलीनप्रवचनप्रणाति, प्रतिबद्धविहारहरिचरित श्री वर्धमानाऽभिधान मुनिपतिपादोपसेविनः,प्रमाणादिव्युत्पादन प्रवणप्रकरणप्रबन्धप्रणायिनः प्रबुद्ध प्रतिबंध प्रवक्तृप्रवीणाऽप्रतिहतप्रवचनार्थप्रधानवाक्प्रसारस्य,सुविहितमुनिजन मुख्यस्य श्री जिनेश्वराचार्यस्यतदनुजस्यचव्याकरणादिशास्त्रकर्त्तः श्रीबुद्धिसागराचार्यस्य, चरणकमलचंचरीककल्पेन श्रीमदभयदेव सूरिनाम्ना मया महावीर जिनराज संतान वर्त्तिना"*

इस टीका में जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि, और अभयदेव-सूरि को चंद्रकुल के लिखा है। आगे चतुर्थांग समवायांग सूत्र की टीका भी देखिये।

"निःसम्बन्धाविहारहारिचारितान्, श्रीवर्धमानाऽभिधान
सूरीन् ध्यातवतोऽति तीव्र तपसो, ग्रन्थ प्रणीति प्रभोः ॥५॥
श्रीमत्सूरिजिनेश्वरस्य जयिनो; दर्प्पीयसां वाग्मिनां ।
तद्बन्धोरपि बुद्धिसागर, इति ख्यातस्यसूरेर्भुवि ॥ ६ ॥
शिष्येणाऽभयदेवाख्य; सूरिणाविवृत्तिः कृता ॥
श्रीमतः समवायाख्य; तुर्यागस्य समासतः ॥ ७ ॥
एकादशसु शतेष्वथविंशत्यधिकेषु विक्रम समानाम् ॥
अणहिलपाटकनगरे रचिता समवाय टीकेयम् ॥ ८ ॥"

इस टीका में जिनेश्वरसूरि के नाम के साथ कहीं भी खरतर शब्द नहीं लिखा है। आगे भगवतीसूत्र की टीका में भी देखिये—

"यदुक्तमादाविह साधुबोधैः श्रीपञ्चमाङ्गोन्नतकुञ्जरोऽयम् ॥
सुखाधिगम्योऽस्त्वितिपूर्वगुर्वी, प्रारभ्यतेवृत्तिवरात्रिकेयम् ॥ १ ॥
समर्थितंसत्पटुबुद्धिसाधु — सहायकात्केवलमत्र सन्तः ॥
सद्बुधिदात्र्याऽपगुणांल्लुनन्तु, सुखग्रहायेनभवत्यथैषा ॥ २ ॥
चान्द्रेकुलेसद्वनकक्षकल्पे, महाद्रुमोधर्म्मफलप्रदानात् ॥
छायाऽन्वितः शस्त विशाल शाखः, श्री वर्धमानोमुनिनायकोऽभूत्
तत्पुष्पकल्पौविलसद्विहार, सद्गन्ध सम्पूर्ण दिशौ समन्तात् ।
बभूवतुःशिष्यवरावनीचवृत्ती श्रुतज्ञानपरागवन्तौ ॥ ४ ॥

एकस्तयोःसूरिवरोजिनेश्वरः ख्यात स्तथाऽन्यो भुवि बुद्धिसागरः ॥
तयोर्विनेयेन विबुद्धिनाऽप्यलं, वृत्तिःकृतैषाऽभयदेवसूरिणा ॥५॥

तयोरेव विनेयानां, तत्पदश्चाऽनु कुर्वताम् ॥
श्रीमतां जिनचंद्राख्य, सत्प्रभूणां नियोगतः ॥ ६ ॥
श्रीमज्जिनेश्वराचार्य शिष्याणां गुण शालिनाम् ॥
जिनभद्रमुनीन्द्राणामस्माकं चांघ्रिहिसेविनः ॥७॥
यशश्चन्द्रगणेर्गाढ़ साहाय्यात सिद्धि मागता ।
पारित्यक्ताऽन्य कृत्यस्य, युक्तायुक्त विवेकिनः ॥ ८ ॥

शास्त्रार्थ निर्णय सुसौरभ लम्पटस्य,
विद्वन्मधुव्रत गणस्य सदैव सेव्याः ।
श्रीनिर्वृताख्य कुल सन्नद पद्म कल्पः
श्रीद्रोणसूरिरनवद्य यशः परागः ॥ ९ ॥

शोधितवान् वृत्तिमिमां, युक्तो विदुषां महा समूहेन ।
शास्त्रार्थ निष्कनिकषण, कष पट्टक कल्प बुद्धीनाम ॥१०॥

इस टीका में अभयदेवसूरि अपने को एवं जिनेश्वरसूरि को चन्द्रकुल के बताते हैं, और अपनी रची हुई टीका महाविद्वान वादि विजयीता निर्वृत्तिकुल के द्रोणाचार्य ( चैत्यवासी ) से संशोधित कराई, ऐसा लिखते हैं।जिसके प्रत्युपकार में जिनवल्लभसूरि ने 'संघपट्टक' ग्रंथ में चैत्यवासियों को खूब फटकारा है। यहां तक कि उनकी मानी हुई त्रिलोक्य पूजनीय जिनप्रतिमा को मांस की बोटी की उपमा दी है और स्वयं आपने साधारण श्रावक से

नया मन्दिर बनवा कर उसके द्वार पर पत्थर में संघपट्टक के ४० श्लोक खुदवाये थे, क्या यह सावद्य कार्य नहीं था ?

अब आगे चल कर ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र की टीका देखिये:—

*"तस्याचार्य" जिनेश्वरस्य मदवद्वादि-प्रतिस्पर्धिनः ॥*
*तद्बन्धो रपि "बुद्धिसागर" इति ख्यातस्य सूरेर्भुवि ॥*
*छन्दो बन्ध निबन्ध बन्धुरवचः शब्दादि सल्लक्ष्मणः॥*
*श्री संविग्न विहारिणः श्रुतनिधेश्चारित्र चूडामणेः ॥८॥*
*शिष्येणाऽभयदेवाख्य, सूरिणा विवृतिः कृता ।*
*ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्य, श्रुतभक्त्या समासतः ॥९॥*

आगे फिर श्रीऔपपातिक वृत्ति का अवलोकन करिये ।

*चन्द्रकुल विपुल भूतल, युग प्रवर वर्धमान कल्प तरोः ।*
*कुसुमोपमस्य सूरे, गुण सौरभ भरित भवनस्य ॥१॥*
*निर सम्बन्ध विहारस्य, सर्वदा श्री जिनेश्वराह्वस्य ।*
*शिष्येणाऽभयदेवाख्य सूरिणेयं कृता वृत्तिः ॥२॥*

इन टीकाओं में अभयदेवसूरि ने वर्धमानसूरि एवं जिनेश्वर-सूरि को चन्द्रकुल के प्रदीप बताया है । यदि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में "खरतरविरुद" मिला होता तो इस महत्व-पूर्ण विरुद को छिपा कर नहीं रखते पर उसका उल्लेख भी कहीं न कहीं अवश्य करते; परन्तु उस समय "खरतर" भविष्य के गर्भ में ही अन्तर्निहित था ।

आगे अब जिनवल्लभसूरि के ग्रन्थों की ओर जरा दृष्टि-पात कर देखिये कि "खरतर" शब्द कहीं उपलब्ध होता है या नहीं ?

जिनवल्लभसूरि कूर्चपुरीया गच्छ के चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे, उन्होंने चैत्यवास छोड़ कर किसी के पास दीक्षा तक भी नहीं ली थी तथा महावीर का गर्भापहार नामक छटा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररूपना कर विधिमाग नामका नया मत निकाला अतः चैत्यवासियों के प्रति उनका द्वेष होना स्वाभाविक ही था। यदि जिनेश्वरसूरि को चैत्यवासियों से शास्त्रार्थ की विजय में "खरतरविरुद" मिला होता, तो जिनवल्लभसूरि चैत्यवासियों के सामने उस विरुद को कभी छिपाये नहीं रखते, किन्तु बड़े गौरव के साथ कहते कि पहिले भी जिनेश्वरसूरि ने चैत्यवासियों को पराजित कर "खरतरविरुद" प्राप्त किया था। परन्तु जिनवल्लभसूरि की विद्यमानता में "खरतर" शब्द का नाम तक नहीं था। यदि जिन-वल्लभसूरि को यह मालूम भी होता, कि जिनेश्वरसूरि को चैत्य-वासियों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय में "खरतरविरुद" मिला है, तो उन्होंने जो "संघपट्टक", सिद्धान्तविचारसार, आगमवस्तुविचार-सार, पिण्ड विशुद्धिप्रकरण, पौषधविधिप्रकरण, प्रतिक्रमणसमाचारी, धर्मशिक्षा प्रश्नोत्तरसार्द्धशतक, शृंगारशतक आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी, उनमें कम से कम वह उल्लेख तो जरूर करते कि जिनेश्वरसूरि को खरतरविरुद मिला था पर किसी जगह उन्होंने यह नहीं लिखा है कि जिनेश्वरसूरि को खरतरविरुद मिला, या हम खरतर गच्छ के हैं। इस पर प्रत्येक विचारशील विद्वान् को विचारना चाहिये, कि यदि जिनेश्वरसूरि को वि० स० १०८० में दुर्लभ राजा ने शास्त्रार्थ की विजय के उपलक्ष्य में "खरतर विरुद" दिया होता तो, सम्भव है— कदाचित स्वयं जिनेश्वर-सूरि निज आत्मश्लाघा के भय से अपने नाम के साथ खरतर

शब्द जोड़ने में सकुचाते, पर आपके पश्चात जो – बुद्धिसागरसूरि, धनेश्वरसूरि, जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, और जिनवल्लभसूरि हुए, वे तो इस गौरवाऽऽस्पद शब्द को कहीं न कहीं जरूर लिखते, पर क्या सब के सब इस सम्मानप्रद शब्द को भूल गये थे ? या कहीं·····रख दिया था, कि पिछले किसी आचार्य को भी इस विरुद की स्मृति तक नहीं हुई ?

वस्तुतः जिनेश्वरसूरि को "खरतरविरुद" मिला ही नहीं था, अभयदेवसूरि तक तो वे सब चन्द्रकुली ही कहलाते थे, जो हमने अभयदेवसूरि रचित टीकाओं के प्रमाण दे कर सिद्ध कर दिखाये हैं इतना ही नहीं पर जिनवल्लभसूरि को भी खरतरों ने खरतर न कह कर, चन्द्रकुली कहा है । तद्यथाः—

*"सूरिः श्री जिनवल्लभोऽजनि बुधश्चान्द्रेकुले तेजसा ।*
*सम्पूर्णोऽभयदेवसूरि चरणाऽम्भोजालिल्लीलीयतः ॥"*

इस प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध होता है कि जिनवल्लभसूरि तक तो वह सब चन्द्रकुल के साधु कहलाते थे ।

एक और भी प्रमाण मिलता है कि जिनवल्लभसूरि के बाद आपके नूतन मत में क्लेश हो कर दो शाखाएँ बन गई थी, एक जिनदत्तसूरि की–खरतर शाखा दूसरी जिनशेखरसूरि की–रूद्रपाली शाखा, रूद्रपाली शाखा के अन्दर विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में एक जयानन्दसूरि नाम के आचार्य हुए उन्होंने आचारदिन-कर ग्रन्थ पर टीका रची है उसकी प्रशस्ति में लिखा है किः—

*"श्रीमज्जिनेश्वरः सूरिर्जिनेश्वर मतं ततः ।*
*शरद्राका शशिस्पष्ट–समुद्र सदृशं व्यधात् ॥१२॥*

नवांग वृत्तिकृत् पट्टेऽभयदेव प्रभुर्गुरो ।
तस्य स्तम्भनकाधीश माविश्चक्र समं गुणैः ॥१३॥

श्राद्ध-प्रबोधप्रवण स्तत पदे जिन वल्लभः ।
सुरिर्वल्लभतां भेजे, त्रिदशानां नृणा मपि ॥१४॥

ततः श्री रुद्रपल्लीय—गच्छ संज्ञा, लसद्यशाः ।
नृप शेखरतां भेजे, सूरीन्द्रो जिनशेखरः ॥१५॥

इस प्रमाण से भी स्पष्ट होता है कि जिनेश्वरसूरि से जिन-वल्लभसूरि तक तो खरतर का नाम निशान भी नहीं था, बाद में जिनदत्तसूरि को लोग खरतर खरतर कहने लगे। इसलिए ही तो जिनदत्तसूरि के खिलाफ़ जिनशेखरसूरि की परम्परा में खर-तर शब्द को स्थान नहीं मिला है। अर्थात् जिनवल्लभसूरि के पट्टधर, जैसे जिनदत्तसूरि हुए, वैसे जिनशेखरसूरि भी जिनव-ल्लभसूरि के पट्टधर आचार्य हुए हैं, और उनका मत्त खरतर नहीं, पर उनके मत का नाम रुद्रपाली था। यदि जिनेश्वरसूरि से ही खरतर मत्त प्रचलित हुआ होता तो जिनशेखरसूरि अपने को रुद्रपाली गच्छ न लिख कर खरतर गच्छ की एक शाखा लिखते? अतः इस प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि वि० सं० १४६८ तक तो किसी की भी यह मान्यता नहीं थी कि जिनेश्वर सूरिको खरतर विरुद कभी मिला था। खुद जिनदत्तसूरिने "गण-धरसार्द्धशतक,, सन्देहदोलावली, गणधरसप्तति, अवस्थाकुलक, चैत्यवन्दनकुलक, चर्चरी, उपदेशरसायन, कालस्वरूपकुलक, आदि अनेक ग्रंथों की रचना की पर आपने कहीं पर यह नहीं

लिखा कि जिनेश्वरसूरि को खतरतर विरुद मिला, और हम उनकी सन्तति श्रेणी में खरतर हैं।

'खरतर' शब्द की उत्पत्ति तो जिनदत्तसूरि से हो गई थी, पर वह अपमान-सूचक होने से किसी ने इस शब्द को अपनाया नहीं था। जिनदत्तसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि हुए, उन्होंने भी किसी स्थान पर ऐसा नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि या जिनदत्त-सूरिसे हम खरतर हुए हैं। इतनाही नहीं पर जिनपतिसूरि ने (वि० सं० १२२३ में सूरिपद) जिनवल्लभसूरि कृत संघपट्टक ग्रंथ पर जो टीका रची है, उसमें उन्होंने जिनेश्वरसूरि से जिनवल्लभसूरि तक के आचार्यों का अत्युक्ति पूर्ण गुण वर्णन करते हुए भी चैत्यवासियों की विजय में उपलब्ध हुआ खरतरविरुदको चैत्यवा-सियों के खण्डन विषयक ग्रंथ में भी ग्रंथित नहीं किया, अतः यह बात हम दावे के साथ कह सकते हैं कि जिनेश्वरसूरि से जिन-वल्लभसूरि तक खरतरशब्द का नाम तक भी नहीं था।

उपरोक्त खरतराचार्यों के प्राचीन ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनेश्वरसूरि से नहीं पर जिनदत्तसूरि से हुई है, और खरतरमत के सिवाय तपागच्छ, आदि जितने गच्छ हुए हैं, उन सब गच्छवालों की भी यही मान्यता है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि से ही हुई थी। अब आगे चल कर हम सर्वमान्य शिलालेखों का अवलोकन करेंगे कि किस समय से खरतरशब्द का प्रयोग किस आचार्य से हुआ है। इस समय हमारे सामने निम्न लिखित शिलालेख मौजूद हैं—

१—श्रीमान् बाबू पूर्णचंदजी नाहर कलकत्ता वालों के संग्रह किये हुए "प्राचीन शिलालेख संग्रह" खण्ड १-२-३ जिनमें

२५९२ शिलालेख हैं, जिसमें खरतर गच्छआचार्यों के वि० सं० १३७९ से १९८० तक के कुल ६६५ शिलालेख हैं।

२—श्रीमान् जिनविजयजी सम्पादित "प्राचीनलेखसंग्रह" भाग दूसरेमें कुल ५५७ शिलालेखोंका सग्रह है जिनमें वि० सं०१४१२ से १९०३ तक के २५ शिलालेख खरतरगच्छ आचार्यों के हैं।

३– श्रीमान् आचार्यविजयेन्द्रसूरि सम्पादित 'प्राचीनलेखसंग्रह' भाग पहिलेमें कुल ५०० शिलालेख हैं जिनमें वि० सं० १४४४से १५४३ तक के शिलालेख हैं उनमें २९ लेख खरतराचार्य के हैं।

४—श्रीमान आचार्य बुद्धिसागरसूरि संग्रहीत "धातु प्रतिमा-लेख संग्रह" भाग पहिले में १५२३, भाग दूसरे में ११५० कुल २६७३ शिलालेख हैं। जिनमें वि० सं० १२५२ से १७९५ तक के ५० शिलालेख खरतराचार्यों के हैं।

एवं कुल ६३२२ शिलालेखों में ७७९ शिलालेख खरतराचार्यों के हैं। अब देखना यह है कि वि० सं० १२५२ से खरतराचार्य के शिलालेख शुरू होते हैं। यदि जिनेश्वरसूरि को वि० सं० १०८० में शास्त्रार्थके विजयोपलक्ष्य में खरतर-विरुद मिला होता तो इन शिलालेखों में उन आचार्यों के नाम के साथ खरतर-शब्द का प्रचुरता से प्रयोग होना चाहिये था, हम यहाँ कतिपय शिला-लेख उद्धृत करके पाठकों का ध्यान निर्णय की ओर खींचते हैं।

*संवत् १२५२ ज्येष्ठ वदि १० श्रीमहावीरदेव प्रतिमा अश्वराज श्रेयोऽर्थं पुत्र भोजराज देवेन कारिपिता प्रतिष्ठा जिन-चंद्र सूरिभिः ॥*

आ० बुद्धि धातु प्र० ले० सं० लेखांक ९३०

ये आचार्य किस गच्छ एवं किस शाखा के थे ? शिलालेख में कुछ भी नहीं लिखा है।

*"संवत् १२८१ वैशाख सुदि ३ शनौ पितामह श्रे० साम्ब पितृ श्रे० जसवीर मातृ लाष एतेषां श्रेयोऽर्थं सुत गांधी गोसलेन बिंबं कारितं प्रतिष्ठितञ्च श्रीचन्द्रसूरि शिष्यः श्री जिनेश्वर सूरिभिः ॥"*

आ० बु० धातु ले० सं० लेखांक ६२७

ये आचार्य शायद् जिनपतिसूरिके पट्टधर हो इनके समय तक भी खरतर शब्द का प्रयोग अपमान बोधक होनेसे नहीं हुआ था।

*"सं० १३५१ माघ वदि १ श्रीप्रल्हादनपुरे श्रीयुगादि देवविधि चैत्य श्रीजिनप्रबोधसूरि शिष्य श्रीजिनचंद्र सूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरि मूर्ति प्रतिष्ठा कारिता रामसिंह सुताभ्यां सा० नोहा कर्मण श्रावकाभ्यां स्वामातृ राई मई श्रेयोऽर्थं ॥"*

आ० बु० धा० ले० सं० लेखांक ७३४

ये आचार्य जिनदत्तसूरि के पांचवे पट्टधर थे। इनके समय तक भी खरतर शब्द को गच्छ का स्थान नहीं मिला था।

*"ॐ सम्वत् १३७६ मार्ग० वदि ५ प्रभु जिनचंद्रसूरि शिष्यैः श्रीकुशलसूरिभिः श्रीशान्तिनाथ बिंबं प्रतिष्ठित कारितञ्च सा० सहजपाल पुत्रैः सा० धाधल गयधर थिरचंद्र सुश्रावकैः स्वपितृ पुण्ययार्थं ॥"*

बाबू पूर्ण खंड तीसरा लेखांक २१८९

ॐ सं० १३८१ वैशाख वदि ५ श्री पत्तने श्री शांतिनाथ

विधि चैत्ये श्री जिनचंद्र सूरि शिष्यैः श्री जिनकुशल सूरिभि श्री जिनप्रबोध सूरि मूर्ति प्रतिष्ठा कारिता च सा० कुमारपाल रतनैः सा० महणसिंह सा० देपाल सा० जगसिंह सा० मेहा सुश्रावकैः सपरिवारैः स्वश्रेयोऽर्थम् ॥

बाबू पूर्ण० खण्ड दूसरा लेखांक १९८८

"सम्वत् १३८१ मा० श्री० १५ खरतरगच्छीये श्री जिनकुशल सूरि शिष्यैः जिनपद्मसूरिभिः श्री पाश्वनाथ प्रतिमा प्रतिष्टिता कारिता च भव० बाहिसुतेन रत्नासिंहेन पुत्र आल्हा-नादि परिवृतेन स्वपितृ सर्व पितृव्य पुण्यार्थं ॥"

बाबू पूर्ण खं० दूसरा लेखांक १९२६

"सं० १३८६ भ० श्रीजिनचन्द्रसूरि शिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिः श्रीपार्श्वनाथ बिंबं प्रतिष्ठितं कारितंच सा० केशवपुत्र रत्न सा० जेहड् सु श्राविकेन पुण्यार्थं ।"

बाबू पूर्ण० खं० दूसरा लेखाङ्क १५४५

यह आचार्य-जिनदत्त सूरि के छठे पट्टधर हुए हैं।

पूर्वोक्त शिलालेखों से पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि जिन-कुशल सूरि के पूर्व किन्हीं आचार्यों के नाम के साथ खरतर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ पर जिनकुशल सूरि के कई शिलालेखों में खरतर शब्द नहीं है और कई लेखों में खरतरगच्छ का प्रयोग हुआ है, इससे यह स्पष्ट पाया जाता है कि खरतर शब्द गच्छ के रूप में जिनकुशलसूरि के समय अर्थात् विक्रम की चौदहवीं शताब्दी ही में परिणत हुआ है। इसका अभिप्राय यह है कि

खरतरशब्द न तो राजाओं का दिया हुआ विरुद है और न कोई गच्छ का नाम है। यदि वि० सं० १०८० में जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में राजादुर्लभ ने खरतरबिरुद दिया होता तो करीब ३०० वर्षों तक यह महत्त्वपूर्ण विरुद गुप्त नहीं रहता। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छाचार्यों की यह मान्यता थी कि खरतरगच्छ के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही थे। और यही उन्होंने शिलालेखों में लिखा है। यहां एक शिलालेख इस बारे में नीचे उद्धृत करते हैं।

"*सम्वत् १५३६ वर्षे फागुणसुदि ५ भौमवासरे श्री उपकेशवंशे छाजहड़गोत्रे मंत्रि फलधराऽन्वये मं० जूठल पुत्र मकालू भा० कर्म्मादे पु० नयणा भा० नामल दे ततोपुत्र मं० सीहा भार्यया चोपड़ा सा० सवा पुत्र स० जिनदत्त भा० लखाई पुत्र्या श्राविका अपुरव नाम्न्या पुत्र समधर समरा संदू संही तया स्वपुण्यार्थं श्रीआदिदेव प्रथम पुत्ररत्न प्रथम चक्रवर्ति श्री भरतेश्वरस्य कायोत्सर्ग स्थितस्य प्रतिमाकारिता प्रतिष्ठिता खरतरगच्छमण्डन श्रीजिनदत्तसूरि श्रीजिनकुशल सूरि संतानीय श्रीजिनचन्द्रसूरि पं० जिनेश्वरसूरि शाखायां श्रीजिनशेखरसूरि पट्टे श्रीजिनधर्मसूरि पट्टाऽलंकार श्रीपूज्य श्री जिनचन्द्रसूरिभिः*"

बा० पू० सं० लेखांक २४०१

इस लेख से पाया जाता है कि सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छ के आदि पुरुष जिनेश्वरसूरि नहीं, पर जिनदतसूरि ही माने जाते थे। खरतरों के पास इससे प्राचीन कोई भी प्रमाण

नहीं है कि वह जनता के सामने पेश कर सके। आधुनिक खरतर अनुयायी प्रतिक्रमण के अन्त में दादाजी के काउस्सग्ग करते हैं। उसमें भी जिनेश्वरसूरि का नहीं पर जिनदत्तसूरि का ही करते हैं और कहते हैं कि खरतरगच्छ शृंगारहार × × × जिनदत्तसूरि आराधनार्थ × × × इससे भी स्पष्ट होजाता है कि खरतर गच्छ के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही हैं।

खरतर शब्द को प्राचीन साबित करने वाला एक प्रमाण खरतरों को ऐसा उपलब्ध हुआ है कि जिस पर वे लोग विश्वास कर कहते हैं कि बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर के संग्रह किये हुए शिलालेख खण्ड तीसरे में वि० सं० ११४७ का एक शिलालेख है।

*"संवत् ११४७ वर्षे श्रीऋषभ विंबं श्रीखरतर गच्छे श्री जिनशेखर सूरिभिः करापितं ॥"*

बा० पू० सं० खं० तीसरा लेखांक २१२४

पूर्वोक्त शिलालेख जैसलमेर के क़िल्ले के अन्दर स्थित चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मन्दिर में है। जो विनपबासन भूमि पर बीस विहरमान तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ स्थापित है, उनमें एक मूर्ति में यह लेख बताया जाता है। परन्तु जब फलोदी के वैद्य मुहता पांचूलालजी के संघ में मुझे जैसलमेर जाने का सौभाग्य मिला तो, मैं अपने दिल की शङ्का निवारणार्थ प्राचीन लेख संग्रह खण्ड तीसरा जिसमें निर्दिष्ट लेख मुद्रित था साथ में लेकर मन्दिर में गया और खोज करनी शुरू की। परन्तु अत्यधिक अन्वेषण करने पर भी ११४७ के संवत् वाली उक्त मूर्ति उपलब्ध नहीं हुई। अनन्तर शिलालेख के नम्बरों से मिलान किया, पर न तो वह मूर्ति ही

मिली और न उस मूर्ति का कोई रिक्त स्थान मिला ( शायद वहाँ से मूर्ति उठाली गई हो ) पुनः इस खोज के लिये मैंने यतिवर्य प्रतापरत्नजी नाडोल वाले और मेघराजजी मुनौत फलोदीवालों को बुलाके जाँच कराई, अनन्तर अन्य स्थानों की मूर्त्तियों की तलाश की पर प्रस्तुत मूर्त्ति कहीं पर भी नहीं मिली। शिलालेख संग्रह नम्बर २१२० से क्रमशः २१३७ तक की सारी मूर्त्तिएँ सोलहवीं शताब्दी की हैं। फिर उनके बीच २१२४ नम्बर की मूर्त्ति वि० सं० ११४७ की कैसे मानी जाय ? क्योंकि न तो इस सम्वत की मूर्त्ति ही वहाँ है और न उसके लिए कोई स्थान खाली है। जैसलमेर में प्रायः ६००० मूर्त्तिएँ बताते हैं, पर किसी शिलालेख में बारहवीं सदी में खरतर गच्छ का नाम नहीं है। अतः ११४७ वाला लेख कल्पित है फिर भी लेख छपाने वालों ने इतना ध्यान भी नहीं रक्खा कि शिलालेख के समय के साथ जिनशेखरसूरि का अस्तित्व था या नहीं ?

अस्तु ! अब हम जिनशेखरसूरि का समय देखते हैं तो वह वि० सं० ११४७ तक तो सूरि-आचार्य ही नहीं हुए थे, क्योंकि जिनवल्लभसूरि का देहान्त वि० सं० ११६७ में हुआ, तत्पश्चात् उनके पट्टधर सं० ११६९ जिनदत्त और १२०५ मे जिनशेखर आचार्य हुए तो फिर ११४७ सम्वत् में जिनशेखरसूरि का अस्तित्व कैसे सिद्ध हो सकता है ?

खरतर शब्द खास कर जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण ही पैदा हुआ था, और जिनशेखरसूरि और जिनदत्तसूरि के परस्पर में खूब क्लेश चलता था। ऐसी स्थिति में जिनशेखरसूरि खरतरशब्द को गच्छ के रूप में मान ले या लिख दे यह सर्वथा

असम्भव है । उन्होंने तो अपने गच्छ का नाम ही रुद्रपाली गच्छ रक्खा था । इस विषय में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी का उल्लेख हम ऊपर लिख आए हैं । अतः इस लेख के लिए अब हम दावे के साथ यह निःशंकतया कह सकते हैं कि उक्त ११४७ सम्वत् का शिलालेख किसी खरतराऽनुयायी ने जाली ( कल्पित ) छपा दिया है । नहीं तो यदि खरतर भाई आज भी उस मूर्ति का दर्शन करवा दें तो इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है ।

भला ! यह समझ में नहीं आता है कि खरतरलोग खरतर शब्द को प्राचीन बनाने में इतना आकाश पाताल एक न कर यदि अर्वाचीन ही मान लें तो क्या हर्ज है ?

जिनदत्तसूरि के पहिले खरतर. शब्द इनके किन्हीं आचार्यों ने नहीं माना था। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का शिलालेख हम पूर्व लिख आये हैं । वहाँ तक तो खरतर गच्छ मंडन जिनदत्त सूरि को ही लिखा मिलता है इतना ही क्यों पर उसी खण्ड के

---

* श्रीमान् *अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वालों द्वारा मालूम हुआ* कि वि० सं० ११४७ वाली मूर्त्ति *पर का लेख दब गया है । अहा–क्या* बात है—आठ सौ वर्षों *का लेख लेते समय तक* तो स्पष्ट बचता था बाद केवल ३-४ वर्षों में ही दब *गया, यह आश्चर्य की बात है । नाहटाजी* ने भीनासर में भी वि० सं० ११८१ की मूर्ति पर शिलालेख में 'खरतर गच्छ' का नाम बतलाया है । इसी का शोध के लिये एक आदमी भेजा गया, पर वह लेख स्पष्ट नहीं बचता है, केवल अनुमान से ही ११८१ मान लिया है । खैर इसी प्रकार बारहवीं शताब्दी का यह हाल है तब हम चाहते हैं जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागर और अभयदेवसूरि के समय के प्रमाण।

लेखांक २३८५ में तो जिनदत्तसूरि को खरतरगच्छावतंस भी लिखा है अतः खरतरमत के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही थे। पर विक्रम की सत्ररवीं शताब्दी में तपागच्छ और खरतरों आपस में वाद-विवाद होने से खरतरों ने देखा कि जिनेश्वरसूरि के लिये पाटण जाने का तो प्रमाण मिलता ही है इसके साथ शास्त्रार्थ की विजय में 'खरतर विरुद' की कल्पना कर ली जाय तो नौअँग वृत्तिकार अभयदेवसूरि भी खरतर गच्छ में माने जायँगे और इनकी बनाई नौअंग की टीका सर्वमान्य है। अतः सर्व गच्छ हमारे आधीन रहेंगे। बस इसी हेतु से इन लोगों ने कल्पित ढांचा खड़ा कर दिया। पर अन्त में वह कहाँ तक सच्चा रह सकता है। जब सत्य की शोध की जाती है तो असत्य की कलई खुल ही जाती है।

खरतर शब्द को प्राचीन प्रमाणित करने वाला एक लेख खरतरों को फिर अनायास मिल गया है और वह पल्ह कवि कृत खरतर पट्टावली का है। जैसा कि—

*"देव सूरि पहु नेमि वहु, बहु गुणिहि पसिद्धउ।*
*उज्योयणु तह वद्धमाणु, खरतर वर लद्धउ॥"*

इस लेख से कवि ने लिखा है कि 'खरतर विरुद' प्राप्त करने वाले जिनेश्वरसूरि नहीं किन्तु उद्योतनसूरि और वर्द्धमानसूरि हैं। जिन लोगों का कहना था कि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में दुर्लभराज ने खरतरविरुद इनायत किया था यह तो बिल्कुल मिथ्या ठहरता है। क्योंकि जिनेश्वरसूरि के गुरु वर्धमान-सूरि और वर्धमानसूरि के गुरु उद्योतनसूरि थे। यदि उद्योतनसूरि

को ही "खरतरविरुद" मिल गया था तो फिर जिनेश्वरसूरि के लिए शास्त्रार्थ की विजय में खरतरविरुद मिला कहना तो स्वयं असत्य साबित होता है। पर यह विषय भी विचारनीय हैं क्योंकि पल्ह कवि कृत खरतर पट्टावली और उनका खुद का समय भी विक्रम की बारहवीं शताब्दी में जिनदत्तसूरि के समकालीन है, और यह कवित्ता भी जिनदत्तसूरि को ही लक्ष्य में रख कर बनाई गई है। फिर भी कवि का हृदय ही संकीर्ण था क्योंकि उसने खरतर की महत्ता बताने को खरतरविरुद का संयोग श्रीउद्योतनसूरि से ही किया। अच्छा तो यह होता कि कवि श्रीमहावीर प्रभु के पट्टधर सौधर्माचार्य्य को ही खरतर विरुद से विभूषित कर देता। और ऐसा करने से सारा झगड़ा-बखेड़ा स्वयं मिट जाता और जैनसमाज सब का सब खरतरगच्छ का उपासक ही बन जाता? वास्तव में तो कविता का आशय जिनदत्तसूरि को ही खरतर कहने का था। यदि ऐसा न होता तो उद्योतनसूरि, बर्धमानसूरि, जिनेश्वशसूरि, बुद्धिसागरसूरि जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि जिनचन्द्रसूर, और जिनपतिसूरि तक के अनेक ग्रन्थ और शिलालेख मिलते हैं जिनमें कतिपय का उल्लेख तो हम ऊपर कर आये हैं कि जिनेश्वर के बाद ३०० वर्षों तक तो खरतर शब्द का किसी ने भी उल्ख नहीं किया और एक अप्रसिद्ध अपभ्रंश भाषा के पल्ह नामक कवि ने उद्योतनसूरि को खरतर विरुदधारक लिख दिया और खरतरों का उस पर यकायक विना सोचे समझे विश्वास हो जाना यह सभ्य समाज को सन्तोषप्रद नहीं हो सकता।

कई अज्ञ लोगों का यह भी कथन है कि पाटण के राजा दुर्लभ की राज-सभा में आचार्य जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों

के बीच शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें 'खरा' रहने वालों को 'खरतर' और हार जाने वालों को 'कँवला' कहा। और वह खरतर तथा कँवला शब्द आज भी मौजूद हैं।

पूर्वोक्त बात कहने वालों का अभिप्राय शायद यह हो कि यह शास्त्रार्थ केवल-उपकेशगच्छ वालों के साथ ही हुआ होगा। कारण कँवला आजकल उपकेशगच्छवालों को ही कहते हैं। इस शास्त्रार्थ के समय पाटण में अनेकाचार्यों के उपाश्रय और वहाँ बहुत आचार्य व साधु रहा करते थे, जिनमें सर्वाऽग्रणी केवल उपकेशगच्छ वालों को ही माना जाता हो और शास्त्रार्थ भी उन्हीं के ही साथ हुआ हो, खैर यदि थोड़ी देर के लिये खरतरों का कहना मान भी लिया जाय कि दुर्लभ राजा की राज सभा में शास्त्रार्थ हुआ और खरा रहने वाले खरतर और हार जाने वाले कँवला कहलाये। पर यह बात बुद्धिगम्य तो होनी चाहिये? कारण दुर्लभ राजा स्वयं बड़ा भारी विद्वान् एवं असाधारण पुरुष था। संस्कृत साहित्य का प्रौढ़ पण्डित एवं पूर्ण प्रेमी था। और यह शास्त्रार्थ भी विद्वानों का था, फिर जय और पराजय के उपलक्ष्य में विरुद देने को उस समय के कोषों में कोई ऐसा सुन्दर और शुद्ध शब्द नहीं था, जो इन ग्रामीण भाषा के अर्थ-शून्य असभ्य शब्दों को जय के लिए खरतर, और पराजय के लिये कँवला जैसे शब्दों को उपहार स्वरूप में स्थान मिला? परन्तु वस्तुतः देखा जाय तो यह बात ऐसी नहीं है। क्योंकि कुदरत का नियम है कि कोई भी विरुद्ध अर्थवाची प्रतिपक्षी दो शब्द बराबर विरुद्ध अर्थ में ही आते हैं। जैसे उदाहरणार्थ देखियेः—

| | | |
|---|---|---|
| धर्म—अधर्म | कठोर—कोमल | दिन—रात |
| सत्य—असत्य | करड़ा—कँवला | मीठा—खारा |
| जय—पराजय | दया—निर्दयी | लोक—अलोक |
| खरा — खोटा | सुख—दुःख | भला—बुरा |

अब जरा सोचना चाहिये कि 'खरा का प्रतिपक्षी शब्द' खोटा होना चाहिये या कँवला? ! खोटाका अर्थ होता है झूठा (असत्य) और कँवला का अर्थ होता है नरम ( कोमल ) । जब कँवला का अर्थ कोमल है तो उसका प्रतिपक्षी "करड़ा" शब्द जिसका अर्थ कठोर होता है, यह उपयुक्त है । हाँ ! लौकिक में 'खरतर' शब्द जरूर विशेष कठोरता का द्योतक हो सकता है परन्तु 'खरा' शब्द नहीं, जब खरा शब्द से यहाँ कठोरता अर्थ न ले और सच्चा यह अर्थ लिया जाय तो यौगिक शब्द 'खरतर' में भी 'खरातर' ऐसा होना चाहिए और उसका प्रतिपक्षी 'खोटा' याने "खोटातर" ही होना चाहिए, पर 'कँवला' नहीं । खर का असली अर्थ उग्र याने तेज, तीक्ष्ण, कठोर है न कि सत्य ( सच्चा) । यदि इसका अर्थ थोड़ी देर के लिए कठोर भी मान लें तो फिर आपका मनगढ़न्त आशाद्रुम अकाल ही में उखड़ जाता है क्योंकि इससे तो लौकिक में यही प्रसिद्ध होगा कि "खरतर" अर्थात् तेज प्रकृति, अशान्तस्वभाव वाला और कँवला कोमल प्रकृति, शान्तस्वभाव वाला। वास्तव में यही अर्थ ले के इन दोनों शब्दों का निर्माण हुआ है जिसे हम आगे चलकर बतला देंगे । पहिले एक सन्दिग्ध सवाल फिर उठता है और वह है कि इस ग्रामीण शब्दके साथ अतिशय अर्थके ज्ञापक तरप् प्रत्यय का संयोग करना, विशेष आश्चर्य तो इस बात

का है कि जो महानुभाव शुद्ध प्रत्यय लगा सकते हों वे इन अशुद्ध शब्दों को भरी राजसभा में पण्डित मण्डली के समक्ष हार जीत के उपहार स्वरूप कैसे दे सकते हैं ? अतः सभ्य समाज में यह थोथी कल्पना स्वयं गन्धर्व नगर लेखा के समान भ्रांति का हेतु सिद्ध होता है।

अब हम उपसंहार—स्वरूप इस बात को वास्तविकतया-निर्णीत कर जल्दी ही लेखनी को विश्राम देंगे। वह यह है कि खरतर और कँवला जय पराजय के द्योतक नहीं पर आपसी द्वेष के हेतु-भूत हैं। कारण यह है कि उपकेशगच्छीय साधुओं का और चन्द्रकुलीय साधुओं का विहार क्षेत्र प्रायः एक ही था। जब भगवान् महावीर के पांच छः कल्याणकादि का वाद-विवाद चल रहा था, तब जिनदत्तसूरि की कठोर प्रकृति के कारण लोग उन्हें खरतर-खरतर कहा करते थे, और उपकेशगच्छीय लोग इस वाद विवाद में सम्मिलित नहीं होते थे, अत: इन्हें कँवले-कँवले कहते थे। खरतरों ने इस शब्द को कुच्छ वर्षों के बाद गच्छ के रूप में परिणत कर दिया, और कँवलों ने कँवला शब्द को कतई काम में नहीं लिया। आज तक भी उपकेशगच्छ के आचार्यों से कराई हुई प्रतिष्ठा के शिलालेख व ग्रन्थों में कहीं कँवलागच्छ का प्रयोग नहीं हुआ है। जहाँ-तहाँ उपकेशगच्छ का ही उल्लेख नजर आता है।

खरतर शब्द की उत्पत्ति किस कारण, कब, और कैसे हुई इस विषय में हमने जिनेश्वरसूरि से लगा कर जिनपतिसूरि तक के ग्रन्थों एवं शिलालेखों के उदाहरण देकर यह परिस्फुट कर दिया है कि खरतर शब्द का प्रादुर्भाव, उद्योतनसूरि, वर्धमान

सूरि और जिनेश्वरसूरि से नहीं पर जिनदत्तसूरि से ही हुआ, और यह भी कोई, मान, महत्वा या विरुद और गच्छ के रूप में नहीं, किन्तु खास कर जिनदत्तसूरि के स्वभाव के कारण ही हुआ है। इस विषय में मेरा और भी अभ्यास चालू हैं ज्यों ज्यों मुझे प्रमाण मिलता जायगा त्यों त्यों मैं आप श्रीमानों की सेवा में उपस्थित करता रहूँगा।

अन्त में खरतरगच्छीय विद्वद् समाज से निवेदन करूँगा कि आप इस छोटी सी किताब को आद्योपान्त ध्यानपूर्वक पढ़ें। यदि मेरी ओर से किसी प्रकार की भूल हुई हो तो आप सप्रमाण सूचना करें कि उसका मैं द्वितीयावृत्ति में ठीक सुधार करवा दूँ। यदि इसके उत्तर में कोई सज्जन किताब लिखना चाहें तो भी कोई हर्ज नहीं है क्योंकि ऐसे विषय की ज्यों ज्यों अधिक चर्चा की जाय त्यों त्यों इसमें विशेष तथ्य प्राप्त होता जायगा और आखिर सत्य अपना प्रकाश किये बिना कदापि नहीं रहेगा, पर साथ में यह बात भी लक्ष्य बाहर न रहे कि आज जमाना सभ्यता का है, विद्वद् समाज में प्रमाणों का प्रेम है सभ्यता एवं सत्यता की ही कीमत है। अतः लेख सभ्यतापूर्वक ही लिखना चाहिये इत्यालम्।

## इति खरतर-मत्तोत्पात्त भाग पहिला

## समाप्तम्

## — खुशखबरी —

बहुत सज्जनों के अत्याग्रह होने से "प्रवचनपरीक्षा नामक ग्रन्थ" का हिन्दी अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है आशा है कि स्वल्प समय में ही पाठकों की सेवा में उपस्थित कर दिया जायगा।

बाबू दीनदयाल 'दिनेश' द्वारा
आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर में छपी

श्रीजैन इतिहास ज्ञान भानु किरण नं० २३

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर पादपद्मेभ्यो नमः

# खरतरमतोत्पत्ति-भाग दूसरा

लेखक

इतिहासप्रेमी-मुनिश्रीज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु० फलौदी ( मारवाड़ )

ओसवाल संवत् २३९६

वीर संवत् २४६६ [ वि० सं० १९९६ ] ई० सं० १९३९

प्रथमावृत्ति ५००

मूल्य दो आना

# दो शब्द

खरतर मतोत्पत्ति भाग पहिले नामक पुस्तक में खरतर मत की उत्पत्ति जो उत्सूत्र से हुई है जिसके कतिपय प्रमाण तथा जिनेश्वरसूरि और अभमदेवसूरि खर-तर नहीं पर चन्द्रकुल की परम्परा में हुए, इस विषय में अभयदेवसूरि की टीकाओं के प्रमाण उद्धृत कर इस विषय को स्पष्ट कर समझा दिया था। बाद में जो प्रमाण मिले हैं उनको इस दूसरे भाग में उद्धृत करके और भी साबित कर दिया है कि जिनेश्वरसूरि पाटण पधारे थे, पर वे न गये राजसभा में, न हुआ चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ और न दिया राजा ने खरतर बिरुद, इत्यादि।

पाठको ! आप इन दोनों भागों को आद्योपान्त पढ़ोगे तो आपको स्वयं बोध हो जायगा कि खरतरों ने कल्पित चित्र बना कर उसके बीच मिथ्या लेख लिख कर अपने पूर्वजों से चली आई कलहवृत्ति का किस प्रकार पोषण किया है।

खैर ! अब आगे तीसरा भाग भी आपकी सेवा में शीघ्र ही उपस्थित कर दूँगा। कुछ समय के लिये आप धैर्य रक्खें।

—लेखक

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर पादकमलेभ्यो नमः

# खरतर-मतोत्पत्ति भाग-दूसरा

खरतरमतोत्पत्ति के विषय प्रमाणों के पूर्व मुझे यह बतला देना चाहिये कि खरतरमतवाले खरतरशब्द की उत्पत्ति किस प्रकार मानते हैं। जैसे कि:—

## १—जिनेश्वरसूरि के पाटण जाने के विषय में

१—कई खरतर कहते हैं कि वर्द्धमानसूरि अपने शिष्य जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि आदि १८ साधुओं के साथ पाटण गये थे ×

२—कई खरतर कहते हैं कि वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि को आज्ञा दी थी कि तुम पाटण जाओ ‡

---

× अन्यदा श्रीवर्द्धमान सूरयः श्रीजिनेश्वर बुद्धिसागराद्यष्टादश साधुभिः परिवृता भूमंडले विहरंतः क्रमेण गुर्जरराष्ट्र श्रीपत्तननगरे गतवंतः इत्यादि

"षट् स्थान प्रकरण पृ० २"

‡ वच्छा ! गच्छह अणहिल्लपट्टणे संपयं जाओ तत्थ ।
सुविहिअ जइप्पवेसं चेइय मुणिणो निवारिंति ॥

"रुद्रपाली संघतिलकसूरि कृत दर्शनसप्ततिक"

एक ग्रन्थ में तो खरतर वर्द्धमानादि १८ साधुओं को पाटण जाना बतलाते हैं तब दूसरे ग्रन्थ में वर्द्धमानसूरि जिनेश्वरसूरि को पाटण जाने की आज्ञा देते हैं। बलिहारी है खरतरों के प्रमाण एवं लेखकों की।

'लेखक'

३—खरतर पट्टावली बताती है कि वर्द्धमानसूरि ने आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा ( वि० सं० १०८८) करवाने के बाद जिनेश्वर और बुद्धिसागर दो ब्राह्मणों को दीक्षा दी थी बाद वर्द्धमानसूरि का देहान्त हुआ और जिनेश्वरसूरि पाटण गये । ❁

४—कई कहते हैं कि जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि अपने शिष्य परिवार के साथ पाटण गये थे । ❁

---

❁ विमलेन हठात् चिन्तितं सर्वोऽप्ययं गिरिमया स्वर्ण मुद्रया गृह्यते । द्विजैर चिन्ति तीर्थं मस्मदीयं सर्वं यास्यतीति विचिन्त्य स्तो कैव धरादत्ता । तत्र महान् श्रीआदिनाथ प्रासाद: कारितः + + + अथैकदा श्रीसूरयः सरस्वतीपत्तने जग्मुः । शालायां स्थिताः स्वशिष्यान् तर्कं पाठयन्ति । तदा जिनेश्वर बुद्धिसागरौ विप्रौ श्रुत्वा तर्कशालायां समेतौ + + + प्रतिबुद्धौ द्वाभ्यामपि दीक्षा गृहीता । पठितानि सम्यग् शास्त्राणि । गुरुभिः पट्टे स्थापितः जातः श्री जिनेश्वरसूरिः

"खरतर पट्टावली पृष्ठ ४३"

यह खरतर पट्टावली बताती है कि वर्द्धमानसूरि ने आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाने के बाद सरस्वती पाटण जाकर जिनेश्वर और बुद्धिसागर को दीक्षा दी । जबकि आबू के मंदिरों की प्रतिष्ठा का समय वि०सं० १०८८ का बताया जाता है । अतः जिनेश्वरसूरि की दीक्षा सं० १०८८ के बाद हुई होगी और इसके बाद जिनेश्वरसूरि पाटण गये होंगे? इसपट्टावलीसे यह सिद्ध होता है कि या तो वर्द्धमानसूरि द्वारा आबु के मंदिरकी प्रतिष्ठा १०८८ में करवाना गलत है या जिनेश्वर का पाटण जाना गलत है अथवा पट्टावली कल्पित है । 'लेखक'

❁ विहरन्तौ शनैः श्रीमत्पत्तनं प्रापतुर्मुदा ।
सद्गीतार्थ परिवारौ तत्र भ्रमंतौ गृहे गृहे ॥

"प्र० च० अभयदेवसूरि प्रबन्ध"

५. कई खरतर कहते हैं कि केवल जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि ही पाटण पधारे थे। †

६ कई खरतर यह भी कहते हैं कि वर्द्धमानसूरि जिनेश्वरसूरि के साथ पाटण गये वहाँ वर्द्धमानसूरि का स्वर्गवास हो गया था, बाद जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ हुआ था। ×

## २—जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किसकी सभा में

१ कई खरतर कहते हैं कि राजा दुर्लभ की सभा में शास्त्रार्थ हुआ। †

२ कई खरतर-राजादुर्लभ (भीम) की सभा में शास्त्रार्थ हुआ कहते हैं। ‡

---

† "राजद्दरथदेवास्मद् गृहे जैनमुनोऽभौ
"प्र० च० अभयदेव प्रबन्ध"

† श्रीजिनेश्वरसूरिः स च बुद्धिसागरेण सार्धं मरुदेशाद् विहारं कृत्वा अनुक्रमेण गुर्जरदेशे अणहिल्लपुर पत्तने समागतः
"खरतर पट्टावलो पृष्ट ११"

× श्रीगुर्ज्जरइ अणहिल्लपाटणि आवी वर्द्धमानसूरि स्वर्गे हुआ तेना शिष्य श्री जिनेश्वरसूरि पाटणिराज श्रीदुर्लभनी सभाई इत्यादि
"सिद्धान्त मग्नसागर पृष्ट ९४"

† दुर्लभ राज सभायां—"खरतर पट्टावली पृष्ट १०"

‡ यति रामलालजी ने महाजनवंशमुक्तावली पृष्ट १६७ पर लिखा है कि राजा दुर्लभ (भीम) की सभा में × ×

‡ वीरपुत्र आनन्दसागरजी ने कल्पसूत्र के हिन्दी अनुवाद में राजा दुर्लभ (भीम) ही लिखा है

## ३—जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किसके साथ हुआ

१ कई खरतर कहते हैं कि शास्त्रार्थ सूराचार्य्य के साथ हुआ ❀
२ कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ कुर्चपुरागच्छवालों के साथ हुआ ऽ
३. कई कहते हैं कि उपकेशगच्छ वालों के साथ शास्त्रार्थ हुआ। ❀

---

❀ तत्र च जिनगृह निवास लम्पटाः चैत्यवासी सूराचार्य्याः आसन् × × × सूराचार्य्यैः वसतिवास प्रतिषेधकं जिनगृहवास समर्थकं स्वकपोल कल्पित शास्त्र प्रमाणं दर्शितम्।

"षट् स्थान प्रकरण प्रस्तावना पृष्ट १"

जिनेश्वरसूरि के समय सूराचार्य्य को सूरिपद तो क्या पर जन्म या दीक्षा भी शायद् ही हुई हो क्योंकि वि० सं० ११२० से ११२८ में अभयदेवसूरि ने सूराचार्य्य के गुरु द्रोणाचार्य्य के पास अपनी टीकाएँ का संशोधन कराया था।

× × ×

ऽ श्री जिनेश्वरसूरि पाटणिराज श्रीदुर्लभनी सभाइं कुर्चपुरा गच्छीय चैत्यवासी साथी कांस्य पात्रनी चर्चा की।

"सिद्धान्त मग० भाग २ पृ० ९४"

× श्रीजिनेश्वरसूरि का अणहिलपुर पट्टण में चैत्यवासी शिथिलाचारी उपकेशगच्छियों के साथ राजादुर्लभ (भीम) की राज सभा में शास्त्रार्थ हुआ इत्यादि।

'महाजनवंश मुक्तावली पृष्ठ १६८'

नोट—उपकेशगच्छ आचार्यों के पास जिनेश्वरसूरि पढ़े थे तो क्या उन्होंने कृतघ्नी हो अपने ज्ञान गुरु से शास्तार्थ किया? यह कदापि संभव नहीं हो सकता है यह केवल द्वेष के मारे कँवला और खरतर शब्द पर ही कल्पना की गई है। 'लेखक'

४. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ चैत्यवासियों के साथ हुआ। †

५. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ ८४ मट्ठपतियों के साथ हुआ। ‡

## ४—जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किस विषय का था।

१. कई खरतर कहते हैं कि शास्त्रार्थ कांसी पात्र का था ❀

२. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ लिंग विषय का था। ऽ

३. कहते हैं कि शास्त्रार्थ चैत्यवास वसतिवास का था। +

४—कई खरतर कहते हैं कि शास्त्रार्थ साध्वाचार का था

## ५—जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय

१. केई खरतर जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय वि०सं० १०२४ का बतलाते हैं

२ कई खरतर शास्त्रार्थ का समय वि० सं० १०८० का बतलाते हैं

---

† तथा चैत्यवासिनो हि पराजय। × × चैत्यवासिभिः सह विवादे "ख० प० पृष्ठ २२"

‡ संवत् १०८० दुर्लभराजसभायां ८४ मट्ठपतीन जित्वा प्राप्त खरतर विरुदः 'ख० प० पृष्ठ १०'

❀ खरतर मुनि मगनसागर अपने सिद्धान्त मगनसागर पृष्ट ९४ पर लिखते हैं कि जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ कांसी पात्र का था

ऽ दुर्लभ राजसभायां लिंगविवादे चैत्यवासिभिः सहविवादे श्रीजिनेश्वर सूरिणा जित्वा 'ख० प० प्र० प० पृष्ठ २७२'

+ सूराचार्यैः वसतिवास प्रतिषेधकं जिनगृहवास समर्थकं स्वकपोल कल्पित शास्त्रप्रमाणां दर्शितम् ÷ + वसतिवास प्रदर्शकं जिनगृह निवास निषेधकं च अनेक प्रमाण संदर्भं दर्शयित्वा 'षटस्थानक प्रकरण प्रस्तावना पृष्ठ २'

३. कई खरतर शास्त्रार्थ का समय वर्द्धमान के स्वर्गवास के बाद का बतलाते हैं।

४. कई खरतर शास्त्रार्थ का समय आबू के मंदिरों की प्रतिष्ठा ( १०८८ ) के बाद का बतलाते हैं ×

## ६—जिनेश्वरसूरि को विरुद

१. कई खरतर कहते हैं कि राजा ने खरतर विरुद दिया।+

२. कई कहते हैं कि विरुद तो 'खरा' दिया था पर बाद में खरतर हो गये। ‡

३. कई कहते हैं कि खरा रहने वाले खरतर तब हार जाने वाले को कँवला कहा ×

४. कई कहते हैं कि हारने वालों को कँवला नहीं पर जब राजा ने खरा कहा तब जिनेश्वरसूरि ने कहा कि हम कोमल हैं।❀

---

४ सा ध्वाचार पत्राणि मुक्तानि; तदानीं गुरुभिरुक्तम × × ×

ख० प० पृष्ठ २२

नोट—अर्वाचीन खरतरों ने यह बात केवल मनः कल्पना से घड़ निकाली है जो में आगे चलकर इसी लेख में साबित कर दूंगा।

× शास्त्रर्थ के समय के लिये नं० १, २, ३, ४, के प्रमाण आगे चलकर इसी किताब में दिये गये हैं। अतः पाठक वहाँ से देखलें।

‡ दुर्लभ राज सभायां ८४ मठपतीन् जित्वा प्राप्त खरतर विरुदः।

ख० प० पृष्ठ १०

‡ जिनेश्वरसूरि मुद्दिश्य 'अतिखराः'—ख० प० पृष्ठ २१

+ ततः खरतर विरुदं लब्धम् । तथा चैत्यवासिनोहि पराजय प्रापणात् 'कँवला' "ख० प०पृष्ठ २२"

❀ यूयं 'खरतराः इति सत्यवादिनः । गुरुभिरुक्तमेते कोमलाः इति।

५. कई कहते हैं कि राजा ने विरुद तो नहीं दिया पर केवल इतना ही कहा कि ये खरा-बस इसको ही खरतर विरुद समझ लिया गया है । ‡

## ७—क्या जिनेश्वरसूरि के पूर्व भी खरतर थे ?

१. कई खरतर कहते हैं कि जिनेश्वरसूरि खरतर थे ।
२. ,, ,, उद्योतनसूरि भी खरतर थे ।
३. ,, ,, वर्द्धमानसूरि भी खरतर थे ।
४. ,, ,, सौधर्मस्वामि भी खरतर थे ।
५. ,, ,, गौतम स्वामि भी खरतर थे । †

उपरोक्त खरतर मतानुयायियों के पृथक् २ लेखों एवं मान्यताओं से इतना तो सहज ही में जाना जा सकता है कि खरतरों ने केवल खरतर विरुद की एक कपोल कल्पित कल्पना करके विचारे भद्रिक जीवों को बड़ा भारी धोखा दिया है । वास्तव में खरतरों को अभी तक यह पता नहीं है कि खरतरशब्द की उत्पत्ति

---

‡ श्रीजिनेश्वरसूरि पाटणिराजश्रीदुर्लभनी सभाइं कुर्चपुरागच्छीय चैत्यवासी साथी कांस्यपात्रनो चर्चा कीधी त्यां श्रीदशवैकालिकनी चर्चा गाथा कही ने चैत्यवासी ने जीत्या तिवारइं राज श्रीदुर्लभ कहइ "ऐ आचार्य शास्त्रानुसारे खरू बोल्या" ते थको वि० सं० १०८० वर्षे श्री जिनेश्वरसूरि खरतर विरुद लीधो ।

"सिद्धान्त मग्नसागर पृष्ठ ९४"

† नं० १, २, ३, ४, ५ के प्रमाण इसी पुस्तक में अन्यत्र दिये जायंगे । अतः पाठक वहां से पढ़ लें ।

क्यों, कब और किस व्यक्ति द्वारा हुई ? यदि शास्त्रार्थ की विजय में खरतर शब्द की उत्पत्ति हुई होती तो इस महत्त्वपूर्ण विरुदकी इस प्रकार विडम्बना नहीं होती जो आज खरतर लोग कर रहे हैं। जिन आचार्यों के लिए आज खरतरे खरतर होने को कह रहे हैं पर न तो वे थे खरतर और न उन्होंने खरतर शब्द कानों से भी सुना था। इतना ही क्यों पर विद्वानों का तो यहां तक खयाल है कि पूर्वाचार्य्यों पर खरत्व का कलंक लगाने वाले ही सच्चे खरतर हैं। अस्तु।

खरतर मत की उत्पत्ति के लिए खरतरों की भिन्न भिन्न मान्यता का परिचय करवाने के बाद अब मैं खर-तरमतोत्पत्ति के विषय में यह बतला देना चाहता हूँ कि खरतर मत की उत्पत्ति किसी राजा के दिये हुए विरुद से हुई है या किसी आचार्य की खर [कठोर] प्रकृति के कारण हुई है ?

इस विषय के निर्णय के लिए मैंने 'खरतरमत्तोत्पत्ति' नामक भाग पहिला में पुष्कल प्रमाणों द्वारा यह साबित कर दिया है कि खरतरशब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की खर प्रकृति की वजह से हुई है। यही कारण है कि उस समय जिनदत्तसूरि खरतर शब्द से सख्त नाराज रहते थे। कारण, यह खरतर शब्द उनके लिये अपमान सूचक था।

प्रथम भाग लिखने के बाद भी मैं इस विषय का अन्वेषण करता ही रहा अतः मुझे और भी कई प्रमाण प्राप्त हुये हैं, जिनको मैं आज आप सज्जनों की सेवामें उपस्थित कर देना समुचित समझता हूँ।

खरतरमतोत्पत्ति में खरतर लोग विशेष कारण चैत्यवासियों का ही बतलाते हैं। अतः पहिले मैं थोड़ासा चैत्यवासियों का परिचय करवा देता हूँ।

चैत्यवास—चैत्य यानि मन्दिर और उसमें ठहरना ( वास ) अर्थात् मंदिर में ठहरना उसको चैत्यवास कहा जाता है। चैत्य की व्यवस्था दो प्रकार से समझी जाती है एक तो चैत्यके सब कम्पाउन्ड को चैत्य कहते हैं और दूसरे चैत्यमें मूलगम्भारा है कि जिसमें भगवान की मूर्त्ति स्थापित की जाय उसको भी चैत्य कहा जाता है।

चैत्य के कम्पाउन्ड में ऐसे भी मकान होते हैं कि जिसमें साधु और गृहस्थ ठहर सकते हैं जैसे भोयणी, पानसर, जघड़िया, जैतारन, कापरड़ा और फलौदी के मन्दिरों में आज भी ऐसे मकान है कि जहाँ साधु ठहर सकते हैं।

चैत्य के मूलगम्भारा के अलावा रंगमण्डपादि स्थान हैं उसमें भी साधु धर्मोपदेश दे सकते हैं अतः एवं मकान की विशालता हो तो साधु ठहर भी सकते हैं कारण कि जब तीर्थङ्करदेव की विद्यमानता के समय भी साधु उनके समीप रहते थे और आहार पानी भी वहीं करते थे। अतः चैत्य में रहने से नुकसान नहीं पर कई प्रकार के फायदे ही थे क्योंकि साधु के चैत्यमें ठहरने से श्रावकों को देवगुरु की भक्ति उपासना या व्याख्यान श्रवणादि में अच्छा सुभीता रहता था। जब बन उपवन एवं जंगलों में चैत्यथे उस समय भी साधु चैत्यों में ही ठहरते थे बाद साधुओं

में वसति की शुरुआत हुई तब भी वे चैत्य में ही ठहरते थे ❀ तथा श्रावकों के घरों में घरदेरासर थे और वे सब उन घरों में ही रहते थे। अतः चैत्यों में साधु ठहरें तो कोई हर्जा नहीं था तथा सम्राट सम्प्रति ने मेदिनी मंदिरों से मंडित की थी। उन्होंने भी चैत्य के समीप एवं चैत्य के अन्दर ऐसे स्थान बना दिये कि जहाँ साधु ठहर सकें और उन स्थानों का नाम उपाश्रय रक्खा था वह भी यही सूचित करते हैं कि वे स्थान चैत्य के समीप थे।

---

❀ उस समय सब धर्म वाले प्रायः धर्मस्थानों ( चैत्य ) में ठहर कर धर्मोपदेश दिया करते थे जैसे बौध भिक्षु बौधचैत्यों में ठहरकर धर्मोपदेश देते थे बाद जब से दिगम्बर मत चला तो उसके साधु भी चैत्यों में धर्मोपदेश दिया करते थे। इतना ही क्यों पर दिगम्बरों के चैत्यों में तो आज भी व्याख्यान एवं स्वाध्याय होता है इसी प्रकार श्वेताम्बर साधु भी अपने चैत्यों में व्याख्यान देते हों तो असम्भव नहीं है श्वेताम्बर समाज में आज भी किसी को छोटी बड़ी दीक्षा देनी होतो चैत्य में ही दी जाती है। उपधान की माला तथा श्री संघ माला की क्रिया चैत्य में ही कराई जाती हैं।

हाँ, जब चैत्यवास में विकृति हो गई, गृहस्थों के करने योग्य कार्य अर्थात् चैत्य की व्यवस्था वे चैत्यवासी साधु स्वयं करने लग गये इस हालत में संघ का विरोध होना स्वाभाविक ही था। चैत्यवासियों को चैत्य से हटाने के बाद भविष्य का विचार कर श्रीसंघ ने यह नियम बना लिया कि अब साधुओं को चैत्य में नहीं ठहरना चाहिये। अतः श्रीसंघ की आज्ञा का पालन करते हुये आज कोई भी साधु मन्दिर में नहीं ठहरते हैं। यदि कोई अज्ञान साधु चैत्य में ठहर भी जाय तो श्री संघ अपना कर्तव्य समझ कर उसको फौरन चैत्य से निकाल दे।

जब तक चैत्यवासी साधुओं का अचार-विचार ठीक जिनाज्ञानुसार रहा वहाँ तक तो अर्थात् आचार्यवज्रस्वामि एवं स्कन्दिलाचार्य के समय तक तो प्रायः किसी ने भी चैत्यवास के विषय विरोध का एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया था अतः चैत्यवास सकल श्रीसंघ सम्मत था।

हां, दुष्काल की भयंकरता ने जैनश्रमणों पर अपना प्रभाव डाला और उस विकट समय में जैन साधुओं में व्यक्तिगत कुछ शिथिलता ने प्रवेश किया भी हो तो यह असम्भव नहीं है और इस विषय का एक प्रमाण प्रभाविकचरित्र में मिलता है कि कोरंटपुर के महावीर मंदिर में एक देवचन्द्रोपाध्याय रहता था और वह चैत्य की व्यवस्था भी करता था, यह कार्य जैनसाधुओं के आचार से विरुद्ध था पर उस समय एक सर्वदेवसूरि नामक सुविहिताचार्य का वहां शुभागमन हुआ और उन्होंने देवचन्द्रोपाध्याय को हितबोध देकर उग्र विहारी बनाया इत्यादि। इस घटना का समय विक्रम की दूसरी शताब्दी के आस-पास का कहा जाता है।

चैत्यवास में शिथिलता के लिये पहिला उदाहरण देवचन्द्रोपाध्यायका ही मिलताहै पर उस समय सुविहितों का शासन सर्वत्र विद्यमान था कि वे कहीं पर थोड़ी बहुत शिथिलता देखते तो उनको जड़ मूल से उखेड़ देते थे। अतः उस समय को सुविहितयुग ही कहा जा सकता है।

---

*अस्ति सप्तशती देशो, निवेशो धर्मकर्मणाम्।
मद्‌दानशभिया भेजु रंत, राज शरणं गजाः॥

कई ग्रन्थों में यह भी लिखा मिलता है कि वीर सं० ८८२ में चैत्यवास शुरू हुआ पर वास्तव में यह समय चैत्यवास शुरूआत का नहीं पर चैत्यवास में विकार का समय है। अतः चैत्यवासियों में शिथिलाचार का प्रवेश विक्रम की पांचवीं शताब्दी

---

तत्र कोरटकं नाम पुर मस्त्युन्नता श्रयम् ।
द्विजिह्वविमुखा यत्र, विनता नन्दना जनाः ॥
तत्राऽस्ति श्री महावीर चैत्यं चैत्यं दधद् दृढम् ।
कैलास शैलवद्भाति, सर्वाश्रय तयाऽनया ॥
उपाध्यायोऽस्ति तत्र श्री देवचन्द्र इति श्रुतः ।
विद्वद्वृन्द शिरोरत्न, तमस्ततिहारो जनैः ॥
आरण्यक तपस्यर्यां, नमस्यर्यां जगत्यपि ।
सक्तः शक्रान्तरंगाऽरि-विजये भवतीर भूः ॥
सर्वदेवप्रभु, सर्वदेव सद्ध्यान सिद्धिभृत् ।
सिद्धक्षेत्रे पिपासुः श्री वारणस्याः समागमत् ॥
वहुश्रत परिवारो, विश्रान्तस्तत्र वासरान् ।
कांश्चित प्रबोध्यतं, चैत्यव्यवहार ममोचयत् ॥
स पारमार्थिकं तीव्रं, धत्ते द्वादशधा तपः ।
उपाध्यय स्ततः सूरि, पदे पूज्यैः प्रतिष्ठितः ॥

"प्रभाविक चारित्र मानदेव प्रबन्ध पृष्ठ १९१

भावार्थ—अेज समयमां सप्तशतो देश मां कोरंटक नामनु नगर हतु अने त्या महावीरनु मंदिर हतु जेनों कारभार उपाध्याय देवचन्द्रना अधिकारिमां हतो तेजसमय सर्वदेवसूरि नामना आचार्य विहार करता एक वार कोरंटक तरफ गया अने उपाध्याय देवचन्द्रने चैत्यनोवहीवट छोड़ावीने आचार्य पद आपी देवसूरि बनाव्या तेज देवसूरि वृद्धदेवसुरि ना नाम थी प्रसिद्ध थया इत्यादि

'पं० मुनि श्री कल्याणविजयजी महाराज"

के आसपास के समय में हुआ था पर यह नहीं समझना चाहिये कि उस समय के सब चैत्यवासी शिथिलाचारी हो गये थे। क्योंकि उस समय भी बहुत चैत्यवासी आचार्य सुविहित एवं अच्छे उग्र विहारीथे और उन्होंके लिखे हुये ग्रन्थ और पुस्तकारूढ़ किये हुए आगम आज भी प्रमाणिक माने जाते हैं।

किसी भी समाज में साधुत्व की अपेक्षा सदा काल एक से साधु नहीं रहते हैं अर्थात सामान्य विशेष रहा ही करते हैं जिसमें भी चैत्यवासियों का समय तो बड़ा ही विकट समय था क्योंकि उस समय कई बार निरंतर कई वर्षोंतक भयंकर दुष्काल का पड़ना; तथा जैनधर्म पर विधर्मियोंके संगठित आक्रमणका होना और उनके सामने खड़े कदम डट कर रहना इत्यादि उन आपत्ति काल में कई कई साधुओं में कुछ आचार शिथिलता आ भी गई हो तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है। फिर भी उस समय चैत्य-वासियों का प्रभाव कम नहीं था। सकल समाज उनको पूज्य भाव से मानता था राजा महाराजा उनके परमोपासक थे हजारों लाखों जैनेतरों को उन्होंने प्रतिबोध दे कर नये जैन बनाये थे, अनेक विषयों पर सैकड़ों ग्रन्थों का निर्माण किया था, जैनधर्म के स्तम्भ रूप अनेक मंदिरमूर्तियों की प्रतिष्ठायें भी करवाई थीं। अगर यह कह दिया जाय कि चैत्यवासियोंने जैनधर्मको उस विकट परिस्थिति में भी जीवित रक्खा तो भी अतिशयोक्ति न होगी।

चैत्यवासियों के समय की एक यह विशेषता थी कि उनका संगठन बल बड़ा ही जबर्दस्त था उस समय कोई भी व्यक्ति स्वच्छन्दतापूर्वक कोई कार्य एवं प्ररूपना नहीं कर सकता था। एवं चैत्यवासियों की सत्ता में कोई व्यक्ति उत्सूत्र प्ररूपना कर अलग

मत नहीं निकाल सकता था तथा किसी ने उत्सूत्र प्ररूपना की तो उसको फौरन संघ बाहर भी कर दिया जाता था।

चैत्यवासियों के लिये सबसे पहिले पुकार हरिभद्रसूरि ने की थी, आपका समय जैनपट्टावलियों के आधार से विक्रम की छठी शताब्दी का कहा जाता है, और उनकी पुकार आचार-शिथिलता की थी न कि चैत्यवास की। क्योंकि हरिभद्रसूरि स्वयं चैत्यवासी थे। इतना ही क्यों पर आपने समरादित्य की कथा में यहां तक लिखा है कि साध्वियों के उपाश्रय में जिनप्रतिमायें थीं और उस चैत्य में रही हुई साध्वियों को केवल ज्ञान भी हो गया था। अतः हरिभद्रसूरि के मत से चैत्यवास बुरा नहीं था पर चैत्यवास में जो विकार हुआ था वही बुरा था और उनकी पुकार भी उस विकार के लिये ही थी।

चैत्यवासियों के लिये दूसरी पुकार वर्द्धमानसूरि की थी। आपका समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी का था, आपकी यह पुकार स्वभाविक ही थी क्योंकि वर्द्धमानसूरि स्वयं चौरासी चैत्य के अधिपति एवं चैत्यवासी थे और उन्होंने चैत्यवास को छोड़ दिया तो वे चैत्यवासियों के लिये पुकार करें इसमें आश्चर्य ही क्या था। वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वर और बुद्धिसागर नामक दो ब्राह्मणों को दीक्षा दी और उनको पाटण भेजे। उन्होंने वहां जाकर वसतिमार्ग नाम का एक नया पन्थ निकाला। इस वसतिमार्ग मत के जन्म के पूर्व प्रायः सब चैत्यवासी ही थे।

तीसरा नम्बर है जिनवल्लभसूरि का, आपका समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का था और आप भी पहिले चैत्यवासी ही थे। चैत्यवास छोड़कर इन्होंने भी चैत्यवासियों की खूब ही

निन्दा की। प्रमाण के लिये आपका बनाया 'संघपट्टक' नामक ग्रन्थ विद्यमान है। जिन चैत्यवासियों का बहुमान कर आचार्य अभयदेवसूरि ने अपनी टीकाओं का संशोधन करवाया था उन्हीं चेत्यवासियों की मानी हुई त्रिलोक पूजनीय तीर्थङ्करों की मूर्तियों को मांस के टुकड़ों की उपमा दे डाली। फिर भी कुदरत जिनवल्लभ के अनुकूल नहीं थी। उसने वि० सं० ११६४ आश्विन कृष्ण त्रयोदशी के दिन चित्तौड़ के किल्ले में ठहर कर भगवान महावीर के गर्भापहार नामक छठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररूपना कर डाली जिससे क्या चैत्यवासी और क्या सुविहित अर्थात सकल श्रीसंघ ने जिनवल्लभ को संघ बाहर कर दिया। *

इतना होने पर भी चैत्यवासियों का प्रभाव कम नहीं हुआ था पर शासन की प्रभावना करने के कारण समाज उनका आदरमान पूजा सत्कार करता ही रहा। इस विषय में अधिक न लिख कर केवल इतना ही कह देना मैं उचित समझता हूँ कि जैनधर्म के प्रभाविक पुरुषों के लिये वि० सं० १३३४ राज-गच्छीय प्रभाचन्द्रसूरि ने एक प्रभाविक चरित्र नामक ग्रन्थ लिखा है जिसमें आचार्य वज्रस्वामि से लेकर आचार्य हेमचन्द्र सूरि तक के प्रभाविक आचार्यों का जीवन संकलित किया है जिसमें अधिकतर चैत्यवासी आचार्यों को ही प्रभाविक समझ कर उनका ही प्रभाव बतलाया है जैसे वादीवैताल शान्तिसूरि, महेन्द्रसूरि, द्रोणाचार्य्य, सूराचार्य्य, वीराचार्य्य और हेमचन्द्र सूरि के जीवन लिखे हैं पर नामधारी सुविहित-सुधारक एवं

---

* असंविग्न समुदायेन, संविग्न, समुदायेन संघ वहिष्कृतः "प्रवचन२४९" परीक्षा पृष्ठ

क्रियाउद्धारकों का प्रभाविक पुरुषों में नाम निशान तक भी नहीं हैं क्योंकि इन लोगों ने शासन की प्रभावना नहीं की पर शासन में फूट-कुसम्प डालकर एवं नये २ मत निकालकर शासन का संगठनबल तोड़ २ कर शासन को अधिक से अधिक नुकसान पहुँचाया था। अतः उन्हों की गिनती प्रभावकों में नहीं पर उत्सूत्रप्ररूपकों में ही की गई थी। जरा चैत्यवासियों के साथ उनकी तुलना करके देखिये:—

१—चैत्यवासियों के शासन में जैनसमाज का संगठन था वह बाद में नहीं रहा क्योंकि श्रीसंघ का संगठन तोड़ने का तो इन नूतन मतधारियों का खास ध्येय ही था।

२—चैत्यवासियों के समय समाज की देवगुरुधर्म पर दृढ़ श्रद्धा थी वह बाद में नहीं रही थी क्योंकि नूतनमतधारियों ने भद्रिकों के हृदय में भेदभाव डाल दिया था।

३—चैत्यवासियों के समय समाज तन धन इज्जत मान प्रतिष्ठा से समृद्धिशाली था वैसा बाद में नहीं रहा क्योंकि मत-धारियों ने समाज में फूट डाल कर उनका पुन्य हटा दिया था।

४—चैत्यवासियों के शासन में बड़े २ राजा महाराजा जैनधर्मोपासक एवं जैनधर्म के अनुरागी थे वैसे बाद में नहीं रहे क्योंकि वे मतधारी लोग तो केवल घर में फूट डालने में ही अपना गौरव समझते थे।

५—चैत्यवासियों ने अपनी सत्ता के समय जैनधर्म की उन्नति करके जैनधर्म को देदीप्यमान रक्खा था वैसे बाद में किसी ने नहीं रक्खा। इतना ही क्यों पर बाद में तो उन लोगों

ने अनेक प्रकार से उत्सूत्र भाषण कर जैनधर्म को जहाँ तहाँ झाका सा बना दिया था।

६—चैत्यवासियों ने अपने समय में जितने जैनेतरों को जैन बनाया था उनके बादमें किसीने भी उतने नहीं बनाये। इतना ही क्यों पर इस प्रकार नये नये मत निकलने से जैनों का पतन ही हुआ था।

७—चैत्यवासियों के समय जैनसमाज का जितना धनबल, मनबल एवं संख्याबल था वह बाद में नहीं रहा अर्थात् चैत्यवासियों के अस्त के साथ जैनसमाज का सूर्य्य भी अस्त होता ही गया।

इत्यादि चैत्यवासी युग एक जैनियों का उत्कृष्ट पुन्य वृद्धि-रूप उत्कर्ष का युग था। यह तो मैंने मुख्यता की बात कही है गौणता में कई चैत्यवासी शिथिल भी होंगे और वे अपनी चरम सीमा तक भी पहुँच गये होंगे पर ऐसे व्यक्तियों का दोष सर्व समाज पर नहीं लगाया जाता है फिर भी उत्सत्र प्ररूपकों की बजाय तो वे हजार दर्जे अच्छे ही थे और इस प्रकार के शिथिलाचारी तो नामधारी सुविहितों में भी कम नहीं थे। उनमें भी समयान्तर पतित एवं परिग्रहधारियों की पुकारें हो रही थीं और कई बार क्रिया-उद्धार करना पड़ा था। इतना ही क्यों पर उनकी मान्यता के खिलाफ भी कई मत पन्थ निकाल कर शासन को अधिक से अधिक नुकसान पहुँचाया था।

मेरे उपरोक्त लेख से पाठक समझ गये होंगे कि चैत्यवासी समाज कोई साधारण समाज नहीं पर जैनधर्म का स्तम्भ एवं

जैनधर्म को जीवित रखने वाला जैनधर्म का शुभचिन्तक समाज था। जिसकी खरतरों ने भरपेट निंदा की है।

चैत्यवासियों का संक्षिप्त परिचय के पश्चात् अब मैं खरतर मतोत्पत्ति के लिये कहूँगा कि खरतर मत वाले कहते हैं कि वि० सं० १०८० में जिनेश्वरसूरि ने पाटण के राजा दुर्लभ की राजसभा में चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय के उपलक्ष में खरतर विरुद प्राप्त किया। यह कहाँ तक ठीक *है? इसके लिये सबसे पहिले तो आप प्रभाविक चरित्र को उठा कर देखिये जिसको आचार्य प्रभाचन्द्रसूरि ने वि० सं० १३३४ में निर्माण किया है उसको सब गच्छों वालों ने प्रमाणिक माना है उसमें आचार्य अभयदेवसूरि के प्रबन्ध में जिनेश्वरसूरि के लिये क्या लिखा है?

ज्ञात्वौचित्यं च सूरित्वे, स्थापितौ गुरुभिश्चतौ।
शुद्धवासोहिसौरभ्य,वासंसमनुगच्छति ॥ ४२ ॥
जिनेश्वरस्ततःसूरिरपरोबुद्धिसागरः।
नामभ्यांविश्रुतौपूज्यैर्विहारेऽनुमतौ तदा ॥ ४३ ॥
ददे शिक्षेति तैः, श्रीमत्पत्तने चैत्यसूरिभिः।
विघ्नं सुविहितानां, स्यात्तत्रावस्थानवारणात् ॥ ४४ ॥
युवाभ्यामपनेतव्यं, शक्त्या बुद्ध्या च तत्किल।
यदिदानींतने काले, नास्ति प्राज्ञोऽभवत्समः ॥ ४५ ॥
अनुशास्तिं प्रतीच्छाव, इत्युक्त्वा गूर्जरावनौ।
विहरन्तौ शनैः, श्रीमत्पत्तनं प्रापतुर्मुदा ॥ ४६ ॥

---

* प्रमाणों के लिये खरतरमतोत्पत्ति भाग पहिला पढ़ना जरूरी है।

सद्गीतार्थ परीवारौ, तत्रभ्रान्तौगृहे गृहे ।
विशुद्धोपाश्रयालाभाद्वाचं, सस्मरतुर्गुरोः ॥ ४७ ॥
श्रीमान् दुर्ल्लभराजाख्यस्तत्र चासीद्विशांपतिः ।
गीष्पतेरप्युपाध्यायो, नीति विक्रमशिक्षणे(णात्) ॥ ४८ ॥
श्री सोमेश्वरदेवाख्यस्तत्र, चासीत्पुरोहितः ।
तद्गेहेजग्मतुर्युग्मरूपौ, सूर्यसुताविव ॥ ४९ ॥
तद्द्वारेचक्रतुर्वेदोच्चारं, संकेतसंयुतौ ।
तीर्थं सत्यापयन्तौ च, ब्राह्मंपैत्र्यंच दैवतम् ॥ ५० ॥
चतुर्वेदीरहस्यानि, सारिणीशुद्धिपूर्वकम् ।
व्याकुर्वन्तौसशुश्राव, देवतावसरेततः ॥ ५१ ॥
तद्ध्वानध्याननिर्मग्नचेताःस्तम्भितवत्तदा ।
समग्रेन्द्रियचैतन्यं, श्रुत्योरिवसनीतवान् ॥ ५२ ॥
ततोभक्त्यानिजं, बन्धुमाप्यायवचनामृतैः ।
आह्वानायतयोः, प्रैषीत्प्रेक्षाप्रेक्षीद्विजेश्वरः ॥ ५३ ॥
तौ च दृष्ट्वाऽन्तरायातौ, दध्यावम्भोजभूः किमु? ।
द्विधाभूयाद ( ? ) आदत्त, दर्शनंशस्यदर्शनम् ॥ ५४ ॥
हित्वाभद्रासनादीनि, तद्दत्तान्यासनानि तौ ।
समुपाविशतांशुद्धस्वकम्बलनिषद्ययोः ॥ ५५ ॥
वेदोपनिषदांजैनश्रुत, तत्त्वगिरांतथा ।
वाग्भिः साम्यं प्रकाश्यैतावभ्यधत्तां तदाशिषम् ॥ ५६ ॥

तथाहि— "अपाणिपादोह्यमनोग्रहीता ।
पश्यत्यचक्षुःसशृणोत्यकर्णः ॥
सवेत्तिविश्वं,नहितस्यवेत्ता ।
शिवोह्यरूपीसजितोऽवताद्वः ॥ ५७ ॥
ऊचतुश्चानयोःसम्यगवगम्यार्थसंग्रहम् ।
दययाऽभ्यधिकंजैनं,तत्रावामाद्रियावहे ॥ ५८ ॥
युवामवस्थितौकुत्रेत्युक्ते,तेनोचतुश्चतौ ।
न कुत्रापि स्थितिश्चैत्यवासिभ्यो लभ्यते यतः ॥ ५९ ॥
चन्द्रशालां निजां चन्द्रज्योत्सनानिर्मलमानसः ।
सतयोरार्प्पयत्तत्र,तस्थतुस्सपरिच्छदौ ॥ ६० ॥
द्वाचत्वारिंशताभिक्षा,दोषैर्मुक्तमलोलुपैः ।
नवकोटिविशुद्धंचायातं,भैक्ष्यमभुञ्जताम् ॥ ६१ ॥
मध्याह्नियाज्ञिकस्मार्त्त,दीक्षितानग्निहोत्रिणः ।
आहूयदर्शितौतत्र, निर्व्यूढौतत्परीक्षया ॥ ६२ ॥
यावद्विद्याविनोदोऽयं,विरञ्चेरिवपर्षदि ।
वर्त्ततेतावदाजग्मुर्नियुक्ताश्चैत्यमानुषाः ॥ ६३ ॥
ऊचुश्च ते झटित्येव, गम्यतांनगराद्बहिः ।
अस्मिन्न लभ्यते स्थातुं, चैत्यबाह्यसिताम्बरैः ॥ ६४ ॥
पुरोधाःप्राहनिर्णयमिदंभूपसभान्तरे ।
इतिगत्वानिजेशानमिदमाख्यातभाषितम् ॥ ६५ ॥

इत्याख्यातेचतैः सर्वैः समुदायेनभूपतिः ।
वीक्षितःप्रातरायासीत्तत्र,सौवस्तिकोऽपि सः ॥ ६६ ॥
व्याजहाराथदेवास्मद्गृहेजैनमुनीउभौ ।
स्वपक्षेस्थानमप्राप्नुवन्तौ,संप्रापतुस्ततः ॥ ६७ ॥
मया च गुणगृह्यत्वात्, स्थापिताबाश्रये निजे ।
भट्टपुत्राअमीभिर्मे,प्रहिताश्चैत्यपक्षिभिः ॥ ६८ ॥
अत्रादिशत मेक्षूणं, दण्डं वाऽन्यथार्हतम् ।
श्रुत्वेत्याह स्मितं कृत्वा, भूपालः समदर्शनः ॥ ६९ ॥
मत्पुरेगुणिनोऽकस्माद्देशान्तरतआगताः ।
वसन्तः केन वार्यन्ते ?, को दोषस्तत्र दृश्यते ? ॥ ७० ॥
अनुयुक्ताश्च ते चैवं, प्राहुः शृणु महिपते ! ।
पुरा श्रीवनराजाऽभूत्,चापोत्कटवरान्वयः ॥ ७१ ॥
स बाल्ये वर्द्धितः श्रीमद्देवचन्द्रेणसूरिणा ।
नागेन्द्रगच्छभूद्धारप्राग्वराहोपमास्पृशा ॥ ७२ ॥
पंचासराभिधस्थानस्थितचैत्यनिवासिना ।
पुरं स च निवेश्येदमत्र, राज्यंदधौनवम् ॥ ७३ ॥
वनराजविहारंच,तत्रास्थापयतप्रभुं ।
कृतज्ञत्वादसौतेषां,गुरूणामर्हणंव्यधात् ॥ ७४ ॥
व्यवस्था तत्र चाकारि, सङ्घेन नृपसाक्षिकम् ।
संप्रदाय विभेदन, लाघवं न यथा भवेत् ॥ ७५ ॥

चैत्यगच्छयतिव्रातसम्मतोवसतान्मुनिः ।
नगरेमुनिभिर्नात्र,वस्तव्यंतदसम्मतैः ॥ ७६ ॥
राज्ञां व्यवस्था पूर्वेषां, पाल्या पाश्चात्यभूमिपैः ।
यदादिशसि तत्कार्य्यं, राजन्नेवं स्थिते सति ॥ ७७ ॥
राजा प्राह समाचारं, प्राग्भूपानां वयं दृढ़म् ।
पालयामोगुणवतां,पूजांतूल्लङ्घयेम न ॥ ७८ ॥
भवादृशांसदाचारनिष्ठानामाशिषानृपाः ।
एधंतेयुष्मदीयंतद्राज्यंनात्रास्तिसंशयः ॥ ७९ ॥
"उपरोधेन"नोयूयममीषांवसनंपुरे ।
अनुमन्यध्वमेवंच,श्रुत्वा तेऽत्र तदादधुः ॥ ८० ॥
सौवस्तिकस्ततःप्राह,स्वामिन्नेषामवस्थितौ ।
भूमिः काप्याश्रयस्यार्थं,श्रीमुखेनप्रदीयताम् ॥ ८१ ॥
तदासमाययौतत्र,शैवदर्शनिवासवः ।
ज्ञानदेवाभिधःक्रूरसमुद्रविरुदार्हतः ॥ ८२ ॥
अभ्युत्थाय समभ्यर्च्च्य, निविष्टं निज आसने ।
राजा व्यजिज्ञपत्किंचिदथ (द्य प्र०) विज्ञप्यते प्रभो! ॥ ८३ ॥
प्राप्ताजैनर्षयस्तेषामर्प्पयध्वमुपाश्रयम् ।
इत्याकर्ण्यतपस्वीन्द्रः, प्राहप्रहसिताननः ॥ ८४ ॥
गुणिनामर्चनांयूयं,कुरुध्वंविधुतैनसम् ।
सोऽस्माकमुपदेशानां, फलपाकः श्रियां निधिः ॥ ८५ ॥

शिवएवजिनो, बाह्यत्यागात्परपदस्थितः ।
दर्शनेषुविभेदोहि, चिह्नंमिथ्यामतेरिदम् ॥ ८६ ॥
निस्तुषव्रीहिहट्टानां, मध्येऽत्र (त्रि प्र०) पुरुषाश्रिता।
भूमिः पुरोधसा ग्राह्योपाश्रयाययथारुचि ॥ ८७ ॥
विघ्नः स्वपरपक्षेभ्यो, निषेध्यःसकलोमया ।
द्विजस्तच्चप्रतिश्रुत्य, तदाश्रयमकारयत् ॥ ८८ ॥
ततःप्रभृतिसंजज्ञे, वसतीनांपरम्परा ।
महद्भिः स्थापितं वृद्धिमश्नुते नात्र संशयः ॥ ८९ ॥
श्रीबुद्धिसागरसूरिश्चक्रेव्याकरणंनवम् ।
सहस्राष्टकमानंतच्छ्रीबुद्धिसागराभिधम् ॥ ९० ॥
अन्यदाविहरन्तश्च, श्रीजिनेश्वरसूरयः ।
पुनर्द्धारापुरींप्रापुः, सपुण्यप्राप्यदर्शनाम् ॥ ९१ ॥

"प्रभाविक चरित्र पृष्ट २७५"

भावार्थ—आचार्य्य वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वर व बुद्धिसागर को योग्य समझकर सूरि पद दिया और उनको आज्ञा दी कि पाट्टण में चैत्यवासी आचार्य्य सुविहितों को आने नहीं देते हैं अतः तुम जाकर सुविहितों के ठहरने का द्वार खोल दो। गुरु-आज्ञा शिरोधार्य्य कर जिनेश्वरसूरि एवं बुद्धिसागरसूरि विहार कर क्रमशः पाट्टण पहुँचे घर घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिये उपाश्रय नहीं मिला। उस समय पाटण में राजा दुर्लभ राज करता था और सोमेश्वर नाम का राजपुरोहित भी वहाँ रहता था। दोनों मुनि चलकर उस पुरोहित के यहां आये

और आपस में वार्तालाप होने से पुरोहित ने उनका सत्कार कर ठहरने के लिये अपना मकान दिया क्योंकि जिनेश्वरसूरि एवं बुद्धिसागरसूरि जाति के ब्राह्मण थे। अतः ब्राह्मण ब्राह्मण का सत्कार करे यह स्वाभाविक बात है।

इस बात का पता जब चैत्यवासियों को लगा तो उन्होंने अपने आदमियों को पुरोहित के मकान पर भेजकर साधुओं को कहलाया कि इस नगर में चैत्यवासियों की आज्ञा के बिना कोई भी श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं अतः तुम जल्दी से नगर से चले जाओ इत्यादि। आदमियों ने जाकर सब हाल जिनेश्वरादि को सुना दिया। इस पर पुरोहित सोमेश्वर ने कहा कि मैं राजा के पास जाकर निर्णय कर लूंगा आप अपने मालिकों को कह देना। उन आदमियों ने जाकर पुरोहित का संदेश चैत्यवासियों को सुना दिया। इस पर वे सब लोग शामिल होकर राजसभा में गये। इधर पुरोहित ने भी राजसभा में जाकर कहा कि मेरे मकान पर दो श्वेताम्बर साधु आये हैं मैंने उनको गुणी समझ कर ठहरने के लिये स्थान दिया है। यदि इसमें मेरा कुछ भी अपराध हुआ हो तो आप अपनी इच्छा के अनुसार दंड दें।

चैत्यवासियों ने राजावनराजचावड़ा और आचार्य देवचन्द्र-सूरि का इतिहास सुना कर कहा कि आपके पूर्वजों से यह मर्यादा चली आई है कि पाटण में चैत्यवासियों के अलावा श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकेगा। अतः उस मर्यादा का आपको भी पालन करना चाहिये इत्यादि।

इस पर राजा ने कहा कि मैं अपने पूर्वजों की मर्यादा का

दृढ़ता पूर्वक पालन करने, को कटिबद्ध हूँ पर आपसे इतनी प्रार्थना करता हूँ कि मेरे नगर में कोई भी गुणी जन आ निकले तो उनको ठहरने के लिये स्थान तो मिलना चाहिये। अतः आप इस मेरी प्रार्थना को स्वीकर करें ? चैत्यवासियों ने राजा की प्रार्थना स्वीकार करली।

जब चैत्यवासियों ने राजा को प्रार्थना स्वीकार करली तब उस अवसर को पाकर पुरोहित ने राजा से प्रार्थना की कि हे राजन् ! इन साधुओं के मकान के लिये कुछ भूमि प्रदान करावें कि इनके लिये एक उपाश्रय बना दिया जाय ? उस समय एक शैवाचार्य्य राजसभा में आया हुआ था। उसने भी पुरोहित की प्रार्थना को मदद दी। अतः राजा ने भूमिदान दिया और पुरोहित ने उपाश्रय बनाया जिसमें जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया। बाद चतुर्मास के जिनेश्वरसूरि विहार कर धारानगरी की ओर पधार गये।

इस उल्लेख से पाठक स्वयं जान सकते हैं कि जिनेश्वरसूरि पाटण जरूर पधारे थे पर न तो वे राजसभा में गये न चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और न राजा ने खरतर विरुद ही दिया। इस लेख से स्पष्ट पाया जाता है कि राजसभा में केवल सोमेश्वर पुरोहित ही गया था और उसने राजा से भूमि प्राप्त कर जिनेश्वरसूरि के लिये उपाश्रय बनाया जिसमें जिनेश्वर-

---

१. पाटण बसाने में आचार्य शीलगुणसूरि का ही उपकार था, और देवचन्द्रसूरि शीलगुणसूरि के शिष्य थे और वनराज के कार्य में इनकी पूरी मदद थी अतः देवचन्द्रसूरि का नाम लिया हो।

सूरि ने चतुर्मास किया और बाद चतुर्मास के विहार कर धारा नगरी की ओर पधार गये।

अब आगे चलकर देखिये इससे मिलता हुआ एक प्रमाण खास खरतरों के घर का है जिसको यहां उद्धृत कर दिया जाता है—

वच्छा! गच्छह अणहिल्ल पट्टणे संपयं जओ तत्थ।
सुविहिअजइप्पवेसं चेइअमुणिणोनिर्वारिंति ॥ १ ॥
सत्तीए बुद्धिए सुविहिअसाहूण तत्थ ये पवेसो।
कायव्वो तुम्ह समो अन्नो न हु अत्थि कोऽविविऊ ॥ २ ॥
सीसे धरिऊण गुरुणमेयमाणं कमेण ते पत्ता।
गुज्जरधरावयंसं अणहिल्लभिहाणयं नगरं ॥ ३ ॥
गीअत्थमुणिसमेया भमिआ पइमंदिरं वसहिहेऊ।
सा तत्थ नेव पत्ता गुरूण तो समरिअं वयणं ॥ ४ ॥
तत्थ य दुल्लहराओ राया राव्व सव्व कलकलिओ।
तत्थ (स्स) पुरोहिअसारो सोमेसरनामओ आसी ॥ ५ ॥
तस्स घरे संपन्ना (ते पत्ता) सोऽविहु तणयाण वेअअज्झयणं।
कारेमाणोदिट्ठोसिट्ठो सूरिप्पहाणेहिं ॥ ६ ॥
सुणु वक्रवाणं वेअस्स एरिसं सारणीइ परिसुद्धं।
सोऽवि सुणंतो उप्फुल्लोअण्णे विम्हिओ जाओ ॥ ७ ॥
किं बम्हा रूवजुयं काऊणं अत्तणा इहंउइण्णो।
इह चिंतंतो विप्पो पयपउमं वंदई तेसिं ॥ ८ ॥

सिवसासणस्स जिणसासनस्स सारक्खरे गहेऊणं ।
इअ आसीसा दिन्ना सूरीहिं सकज्जसिद्धिकए ॥ ९ ॥
'अपाणि पादो ह्यमनो ग्रहीता,
पश्यत्य चक्षुः स शृणोत्य कर्णाः ।
स वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता,
शिवो ह्यरुपी स जिनोऽवताद्व ॥ १० ॥
तो विप्पो ते जंपइ चिठ्ठह गुट्ठी तुमेहिं सह होइ ।
तुम्ह पसाया वेअत्थपारगा हुंति मे अ सुआ ॥ ११ ॥
ठाणाभावा अम्हे चिट्ठामो कत्थ इत्थ तुह नयरे ? ।
चेइअवासिअमुणिणो न दिंति सुविहिअजणे वसिउ ॥ १२ ॥
तेणवि सचंदसाला उवींर ठावित्तु सुद्ध असणेणं ।
पडिलाभिअ मज्झण्हे परिक्खिआ सव्वसत्थेषु ॥ १३ ॥
तत्तो चेइयवासी अमुंडा तत्थागया भणंति इमं ।
नीसरह नयरमज्झा चेइअवज्झा न इह ठंति ॥ १४ ॥
इअ वुत्तंतं सोउं रण्णो पुरओ पुरोहिओ भणइ ।
रायावि सयलचेइअवासीणं साहए पुरओ ॥ १५ ॥
जइ कोऽवि गुणड्ढाणं इमाण पुरओ विरूवयं भणिहि ।
तं निअरज्जाउ फुडं नासेमि सकिमियभसणुव्व ॥ १६ ॥
रण्णो आएसेणं वसहिं लहिउं ठिआ चउम्मासिं ।
तत्तो सुविहिअमुणिणो विहरंति जहिच्छिअं तत्थ ॥ १७ ॥

"इत्यादि रुद्रपल्लीय संघतिलक सूरिकृत दर्शन सप्ततिका वृता"
प्रवचन परीक्षा पृ० २८३

भावार्थ—वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि को हुक्म दिया कि तुम पाटण जाओ कारण पाटण में चैत्यवासियों का जोर है कि वे सुविहितों को पाटण में आने नहीं देते हैं अतः तुम जा कर सुविहितों के लिए पाटण का द्वार खोल दो। बस गुरुआज्ञा स्वीकार कर जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि क्रमशः विहार कर पाटण पधारे। वहां प्रत्येक घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिए स्थान नहीं मिला उस समय उन्होंने गुरु के बचन को याद किया कि वे ठीक ही कहते थे कि पाटण में चैत्यबासियों का जोर है खैर उस समय पाटण में राजा दुर्लभ का राज था और उनका राजपुरोहित सामेश्वर ब्राह्मण था। दोनों सूरि चल पुरोहित के वहाँ गये। परिचय होने पर पुरोहित ने कहा कि आप इस नगर में विराजें। इस पर सूरिजी ने कहा कि तुम्हारे नगर में ठहरने को स्थान ही नहीं मिलता फिर हम कहाँ ठहरें? इस हालत में पुरोहित ने अपनी चन्द्रशाला खोल दी कि वहाँ जिनेश्वरसूरि ठहर गये। यह बितीकार चैत्यवासियों को मालूम हुआ तो वे (प्र० च० उनके आदमी) वहाँ जा कर कहा कि तुम नगर से चले जाओ कारण यहां चैत्यवासियों की सम्मति बिना कोई श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं। इस पर पुरोहित ने कहा कि मैं राजा के पास जा कर इस बात का निर्णय कर लूँगा। बाद पुरोहित ने राजा के पास जा कर सब हाल कह दिया। उधर से सब चैत्यवासी राजा के पास गये और अपनी सत्ता का इतिहास सुनाया। आखिर राजा के आदेश से वसति प्राप्त कर जिनेश्वरसूरि पाटण में चतुर्मास किया उस समय से सुविहित मुनि पाटण में यथा इच्छा विहार करने लगे।

यह लेख खास जिनेश्वरसूरि के अनुयायियों का है। इसमें जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे पर न तो वे राजसभा में गये थे न चैत्यवासियों के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ और न राजा दुर्लभ ने उनको खरतर विरुद ही दिया था, केवल पुरोहित राजसभा में गया था। समझ में नहीं आता है कि खरतर झूठ मूट ही जिनेश्वरसूरि को खरतर कैसे बना रहे हैं? इसी प्रकार आचार्य प्रभाचंद्रसूरि रचित प्रभाविक चरित्र का प्रमाण हम पूर्व उद्धृत कर आये हैं। ये दोनों प्रमाण प्राचीन याना चौदहवीं शताब्दी के हैं इसके पूर्व का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है कि जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद तो क्या पर जिससे राजसभा में जाना या शास्त्रार्थ होना सिद्ध होता हो।

जिनेश्वर सूरि के पाटण जाने का समय आधुनिक खरतरों ने वि० सं० १०८० लिखा है वह भी गलत है जिसको मैं पहिले भाग में लिख आया हूँ कि वि० सं० १०८० में पाटण का राजा दुर्लभ नहीं पर भीम था। राजा दुर्लभ का राज तो वि० सं० १०७८ तक ही रहा था। अत. खरतरों का यह लिखना गलत है है कि वि० सं० १०८० में जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद मिला था।

एक सवाल यह उपस्थित होता है कि चैत्यवासी लोग सुविहितों को नगर में क्यों नहीं ठहरने देते थे? शायद चैत्यवासियों को यह भय होगा कि यह चैत्यवासियों से निकल कर नामधारी सुविहित जैनसंघ के संगठन बल के टुकड़े टुकड़े करके संघ में फूट कुसम्प के बीज न बो डालें और आखिर उन्हों की धारणा सोलह आने सत्य ही निकली। कारण, पाटण में जिनेश्वरसूरि

को ठहरने के लिए स्थान मिला और उन्होंने चैत्यवास और वसतिवास का भेदडाल संघ में फूट के बीज बो ही दिये फिर तो ग्राम ग्राम में वसतिवासियों के लिये नये २ मकान बनने शुरू हो गये जैसे ढूँढ़ियों के लिये ग्राम ग्राम में स्थानक बनवाने का प्रचार हुआ था ।

मनुष्य अभिमान के गज पर सवार हो जाता है, तब वह हिताहित का भान तक भूल जाता है। यही हाल नामधारी सुविहितों का हुआ है। जिनेश्वरसूरि चैत्यवासियों के शिथिल आचार की पुकार करने को पाटण गये पर वहां आपने स्वयं अपने लिए बनाये हुये मकान में चतुर्मास कर वज्रक्रिया रूपपाप की गठरी शिर पर उठाई। कारण, साधु के लिये बनाये हुये मकान में साधु को पैर रखना भी नहीं कल्पता है। यदि साधु के लिये बनाया हुआ मकान में साधु ठहरे तो आचारांगसूत्र में सावद्य एव वज्रक्रिया, दशवैकालिक में आचार से भ्रष्ट तथा निशीथसूत्र में दंड बतलाया है। यह कार्य चैत्यवास का रूपान्तर नहीं तो और क्या है? खैर यह तो हुई जिनेश्वरसूरि के पाटण जाने की बात जिसका सारांश यह है कि न तो जिनेश्वरसूरि राजसभा में गये न चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और न राजा ने खरतर बिरुद ही दिया।

यदि जिनेश्वर सूरि को खरतर विरुद मिला होता तो उनके बाद अनेक आचार्य हुये और उन्होंने अनेक ग्रन्थों का निर्माण भी किया, पर उन्होंने किसी स्थान पर यह नहीं लिखा है कि जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद मिला था। खास अभयदेवसूरि ने अपनी बनाई टीकाओं में जिनेश्वरसूरि को चन्द्रकुल के लिखा है

( देखो खरतरमत्तोत्पत्ति भाग पहिला ) आगे चल कर हम जिनवल्लभसूरि के ग्रन्थों को देखते हैं कि उन्होंने कहीं पर जिनेश्वरसूरि को खरतर लिखा है या नहीं ।

न चकोरोदीयतमलमदोषमत मेनिरस्त सद्वृत्तम् ।
नालिककृतावकाशोदयमपरं चांद्रमस्तिकुलम् ॥ १ ॥
तस्मिन् बुधोऽभवदसङ्गविहारवर्ती,
सूरिर्जिनेश्वर इति प्रथितोदय श्रीः ।
श्री वर्द्धमान गुरुदेव मतानुसारी
हारीभवन् हृदि सदा गिरिदेवतायाः ॥२॥

"जिन वल्लभीय प्रशस्त्यपर नाम्न्यमष्ट सप्ततिकायां"

प्र० प० पृ० २९४

जिनवल्लभसूरि के उपरोक्त लेख में शास्त्रार्थ एवं खरतर विरुद की गंध तक भी नहीं है। यदि जिनवल्लभ ने चैत्यवासियों के शास्त्रार्थ की विजय में खरतर विरुद मिलना सुन लिया होता तो वह अपने संघ पट्टक जैसे ग्रन्थ में एवं जिनेश्वरसूरि के साथ यह बात लिखे बिना कभी नहीं रहता पर क्या करे उसके समय खरतर शब्द का जन्म तक भी नहीं हुआ था।

आधुनिक खरतर लोग महाप्रभाविक अभयदेवसूरि को खरतर बनाने का मिथ्या प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु अभयदेवसूरि के विषय में तो मैंने प्रथम भाग में विस्तार से लिख दिया कि वे खरतर नहीं पर चन्द्रकुल में थे। इतना ही क्यों पर आपकी संतान परम्परा में भी कोई खरतर पैदा नहीं हुआ था। देखिये खास अभयदेवसूरि के पट्टधर वर्द्धमानसूरि हुये हैं वे क्या लिखते हैं ?

चंद कुले चंदजसो दुक्कर तव चरणसोसिअसरीरो।
अप्पपडिबद्ध विहारो सूरुव्व विणिग्गयपयावो ॥ १ ॥
एणपरिग्गह रिहिओ विविहसारंगसंग हो निच्चं ।
सयलक्खविजय पयडोऽवि एक्कसंसारभयभीओ ॥ २ ॥
इंदिअतुरिअतुरंग मवसिअरणसुसारही महासत्तो।
धम्मारामुल्लूरणमण मक्कडरूद्ध वावाचारो ॥ ३ ॥
खमदम संजम गुणरोहणो विजिअदुज्जयाणंगो ।
आसि सिरिवद्धमाणो सूरीसव्वत्थ सुपसिद्धो ॥ ४ ॥
सूरिजिणेसर सिरिबुद्धिसायरा सायरुव्व गंभीरा ।
सुरुगुरुसुक्कसरित्था सहोअरा तस्स दो सीसा ॥ ५ ॥
वायरणछंद निग्घंटु कव्वणाडयपमाण समएसु ।
अणिवारी अप्पयारा जाण मई सयल सत्थेसु ॥ ६ ॥
ताण विणेओ सिरिअभयदेवसूरित्तिनाम विक्खाओ।
विजयक्खो पच्चक्खो कय विक्कयसंगहो धम्मे ॥ ७ ॥
जिणमयभवणब्भंतरगूढपयत्थाण पयडणे जस्स ।
दीवयसिहिव्व विमला सूई बुद्धी पवित्थरिआ ॥ ८ ॥
ठाणाइ नवंगाणं पंचासयपमुहपगरणाणं च ।
विवरण करणेण कओ उवयारो जेण संघस्स ॥ ९ ॥
इक्को व दो व तिण्णि व कहवि तु लग्गेण जइगुणा हुंति ।
कलिकाले जस्स पुणो वुच्छं सव्वेहिवि गुणेहिं ॥ १० ॥

सीसेहिं तस्स रइअं चरिअमिणं वद्धमाणसूरीहिं ।
होउ पढंतसुणंताण कारणं मोक्खसुक्खस्स ।। ११ ।।

"वर्द्धमानसूरिकृत प्राकृत गाथात्मक श्रीऋषभदेवचरित्रप्रशस्तौ"

प्रवचन परीक्षा पृष्ठ २९१

इस लेख में जिनेश्वरसूरि एवं अभयदेवसूरि के साथ खरतर शब्द की बू तक भी नहीं है आगे चल कर इन वर्द्धमान सूरि के पट्टधर पद्मप्रभसूरि हुए । आप क्या लिखते हैं —

पूर्वं चन्द्रकुले बभूव विपुले श्री वर्द्धमानप्रभुः,
सूरिमङ्गल भाजनं सुमनसां सेव्यः सुवृत्तास्पदम् ।
शिष्यस्तस्य जिनेश्वरः समजनि स्याद्वादिनामग्रणीः,
बन्धुस्तस्य च बुद्धिसागर इति त्रैविद्यपारङ्गमः ।। १ ।।
सूरिः श्रीजिनचन्द्रोऽभयदेवगुरुर्नवाङ्गवृत्तिकरः ।
श्रीजिनभद्र मुनीन्द्रो जिनेश्वर विभोस्त्रयः शिष्याः ।। २ ।।
चक्रेश्रीजिनचन्द्रसूरि गुरुभिर्धुर्यैःप्रसन्नाभिध-स्तेन ।
ग्रन्थ चतुष्टयीस्फुटमतिः श्रीदेवभद्र प्रभुः ।
देवानन्द मुनीश्वरोऽभवदतश्चारित्रिणामग्रणीः
संसाराम्बुधिपारगामि जनताकामेषु कामं सखा ।। ३ ।।
यन्मुखावासवास्तव्या, व्यवस्यति सरस्वती ।
गन्तुं नान्यत्र स न्याय्यः, श्रीमान्देवप्रभ प्रभुः ।। ४ ।।
मुकुरतुलामङ्कुरयति वस्तु प्रतिबिम्ब विशदमतिवृत्तिम् ।
श्रीविबुधप्रभचित्तं न विधते वैपरीत्यं तु ।। ५ ।।

तत्पद पद्मभ्रमरश्चक्र पद्मप्रभश्चरित मेतद् ।
विक्रमतोऽतिक्रान्ते वेदग्रहरवि १२९४ मिति समये ॥ ६ ॥

इति श्री पद्मप्रभसूरि विरचित श्री मुनि सुव्रत चरित्र प्रशस्तौ

प्रवचन परीक्षा पृष्ठ २९२

इस लेख में भी न तो जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का जिक्र है और न खरतर विरुद की गन्ध भी है। आगे चल कर अभयदेवसूरि की सन्तान में एक धर्मघोषसूरि नाम के आचार्य हुए, उन्होंने आबू के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई जिसका शिलालेख क्या उदघोषना करता है देखिये ।

स्वस्तिश्रीनृपविक्रम संवत् १२९३ वर्षे वैशाख शुक्ल १५ शनावद्येह श्रीअर्बुदाचलमहातीर्थे अणहिल्लपुरवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय त० श्रीचंडप्रसाद महं० सोमान्वये त० आसराज सुत महं श्रीमल्लदेव महंश्रीवस्तुपाल योरनुज महं-श्रीतेजपालेन कारित श्रीलूणसीहवसहिकायां श्रीनेमिनाथ चैत्ये इत्यादि यावत् श्रे० घेलण समुद्धर प्रमुख कुटुम्ब समुदायेन श्रीशान्तिनाथ बिम्बंकारितं प्रतिष्ठित च नवाङ्गी वृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिसंतानीयैः श्रीधर्मघोषसूरिभि "

प्रवचन परीक्षा पृष्ठ २९२

इस शिलालेख से इतना तो स्पष्ट सिद्ध हो सकता है कि अभयदेवसूरी तो क्या पर आपकी परम्परा में कोई भी खरतर पैदा नहीं हुआ था, इतना ही क्यों पर अभयदेवसूरि के साथ खरतरों का कुछ सम्बन्ध भी नहीं था। कारण श्रीअभयदेवसूरि तो

शुद्ध चन्द्रकुल की परम्परा में है तब खरतर मत की उत्पति कुर्च-पुरागच्छीय जिनवल्लभसूरी के पट्टधर जिनदत्तसूरि से हुई थी।

उपरोक्त प्रमाणिक प्रमाणों को पढ़ कर पाठकों को यह सवाल होना स्वाभाविक ही है कि जब प्राचीन किसी ग्रन्थ में जिनेश्वर सूरि का चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ एवं खरतर विरुद की जिक्र तक नहीं है तो फिर यह मान्यता किसके द्वारा और किस समय में हुई कि जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और राजा दुर्लभ ने जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद दिया?

जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ और खरतर विरुद की कल्पना एक ही साथ में नहीं हुई थीं परन्तु पहिले शास्त्रार्थ की कल्पना की गई थी और बाद में खरतर विरुद की। जिसमें शास्त्रार्थ की कल्पना तो सबसे पहिले विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में जिनपतिसूरि ने की थी जैसे कि:—

चौलुक्यवंशमुक्तामाणिक्यचारुतत्वविचारचातुरी धुरीण विलसदंगरंग नृत्यन्नीत्यंगनारँ जितजगझन समाज श्रीदुर्लभराज महाराज सभायां। अनल्पजल्पजलधि समुच्छलदतुच्छविकल्पकल्लोलमाला कवलितवहलप्रतिवादिकोविद ग्रामण्यासंविग्रमुनि निवहाग्रण्या, सुविहितवसतिपथप्रथनरविणा वादिकेसरिणा श्रीजिनेश्वरसूरिणा। श्रुतयुक्तिभिर्वहुधा, चैत्यवासव्यवस्थापनंप्रतिप्रतिक्षिप्तेष्वपि लांपट्याभिनेवेशाभ्यां तन्निर्बंध मजहत्सु यथाच्छंदेषु।

जिनवल्लभसूरिकृत संघ पट्टक पृष्ठ ४

इस टीका में जिनपतिसूरि ने जिनेश्वरसूरि को वादी विजयता बतलाया है यह केवल जिनेश्वरसूरि के विशेषण रूप में ही है न कि राजसभा में जाकर किसी चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त करने के लिये है फिर भी पिछले लोगों ने गाड्डरी प्रवाह की भांति जिनपतिसूरि की टीका का सहारा लेकर भिन्न-भिन्न कल्पना कर डाली हैं पर जब खास जिनपतिसूरि ने ही मिथ्या कल्पना की जो ऊपर के प्रमाणों से साबित होता है तो पिछले लोगों की कल्पना तो स्वयं ही मिथ्या साबित हो जाती है। अब यह सवाल उपस्थित होता है कि जिनपतिसूरि ने यह मिथ्या कल्पना क्यों की होगी ? इसके लिये यह कहा जा सकता है कि उस समय जिनपतिसूरि के सामने कई ऐसे भी कारण उपस्थित थे कि उनको इस प्रकार की मिथ्या कल्पना करनी पड़ी जैसे कि:—

१—यह संघपट्टक नामक ग्रन्थ जिनवल्लभसूरि ने चैत्यवासियों के खंडन के विषय में बनाया था जिसकी टीका जिनपतिसूरि लिख रहे थे।

२—चैत्यवासियों को विशेष हलके दिखाने थे।

३—चैत्यवासी जिनवल्लभसूरि को गर्भापहार नामक छट्टा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररूपना के कारण संघ बाहर करने में शामिल थे इसका बदला भी लेना था।

४—जिनेश्वरसूरि पाटण गये उस समय चैत्यवासियों ने न तो उनको ठहरने के लिए स्थान दिया था और न ठहरने ही दिया था उसका भी रोष था।

५—जिनदत्तसूरि ने पाटण में स्त्रियों को जिनपूजा निषेध

कर उत्सूत्र की प्ररूपना की जिससे उनको संघ बाहर करने में भी चैत्यवासी शामिल थे यह बात भी जिनपति को खटकती थी।

६—चैत्यवासियों को यह भी बतलाना था कि पहिले भी जिनेश्वरसूरि ने पाटण में चैत्यवासियों को पराजय किया था।

७—विधिमार्ग नामक नये मत पर जो उत्सूत्र का कलंक था उसको भी छिपाना-मिटाना एवं धो डालना था।

इत्यादि कारणों से जिनपतिसूरि ने इस प्रकार की मिथ्या कल्पना की थी।

फिर भी उस समय जिनपतिसूरि ने एक बड़ी भारी भूल तो यह की थी कि जिनेश्वरसूरि के लिए अन्यान्य विशेषणों के साथ खरतर विरुद् का विशेषण लगाना भूल गये। बस यह जिनपति-सूरि की भूल ही आज खरतरों के मार्ग में रोड़ा अटका रही है।

शायद खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की खर प्रकृति के कारण हुई थी और उस समय इस खरतर शब्द को जिनदत्त-सूरि व उनके शिष्य अपमान के रूप में समझते थे और जिनपति-सूरि के समय इसको अधिक समय भी नहीं हुआ था। कारण, जिनदत्तसूरि का देहान्त वि. सं. १२११ में हुआ तब सं० १२२३ में जिनपति-सूरि बना था। यही कारण है कि जिनपति ने जिनदत्त-सूरि को खरतर नहीं लिखा था।

आधुनिक खरतरों को इस अपमान सूचक और लोकनिन्द-नीय खरतर शब्द पर इतना मोह एवं आग्रह हो आया है कि खरतर शब्द को बिरुद एवं प्राचीन सिद्ध करने के लिये 'षट स्थानक-प्रकरण' की प्रस्तावना में खरतर मतानुयायियों के कई प्रमाण उद्धृत कर बिचारे थली जैसे भद्रिक लोगों को धोखा दिया है फिर

भी उन प्रमाणों से तो उल्टा यह सिद्ध होता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक तो किसी की भी यह मान्यता नहीं थी कि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में खरतर विरुद मिला था। हां बाद में यह कल्पना की गई है कि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में खरतर विरुद मिला। अगर ग्यारहवीं शताब्दी में विरुद मिले जिसकी ३०० वर्ष तक के साहित्य में गन्ध तक नहीं और ३०० वर्षों के बाद वह गुप्त रहा हुआ विरुद प्रगट हो यह कभी हो ही नहीं सकता है। खैर, खरतरों के दिये हुए प्रमाणों को मैं यहां उद्धृत कर देता हूँ कि इन प्रमाणों से जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद मिला सिद्ध होता है या खरतरों की मिथ्या कल्पना साबित होती है लीजिए—

—पहला प्रमाण अभयदेवसूरि की टीका का है जिसके लिये मैं प्रथम भाग में श्रीस्थानायांगसूत्र, समवाय गसूत्र, भगवतीसूत्र, और ज्ञाता उपपातिकसूत्र की टीकाओं का प्रमाण दे आया हूँ कि उन्होंने जिनेश्वरसूरि को चन्द्रकुल का होना लिखा है।

—वि. सं. ११३९ वर्षे श्री गुणचन्द्रगणि विनिर्मित प्राकृत वीर चरित्र प्रशस्ति प्रान्ते—

भवजलेहि वीइसंभंत भवियसंताण तारण समत्थो।
बोहित्थोव्व महत्थो सिरिजिणेसरो पढमो ॥ ५१ ॥
गुरुसीराओ धवलाओ सुविहिया साहुसंती जाया।
हिमवंताओ गुगुव्व निग्गया सयलजणपुञ्जा ॥ ५२ ॥

षट् स्थानक प्रकरणम् पृष्ठ १

सं० ११३२, ११४१, ११६९, १२११, वर्षेषु क्रमशः जन्म दीक्षा सूरिपदस्वर्गभाजः श्री जिनदत्त सूरयः गणधर सार्द्धशतके—

तेसिं पयपउमसेवारसिओ भमरुव्व सव्वभमरहिओ ।
ससमयपरसमयपयत्थसत्थवित्थारणसमत्थो ॥६४॥
अणहिल्लवाडए नाडइव्व दंसियसुपत्त संदोहे ।
पउरपए बहुकविदूसगे य सन्नायगाणुगए ॥६५॥
सड्ढियदुल्लहराए सरसइअंकोव सोहिए सुइए ।
मज्झो–रायसहं पविसिऊण लोयागमाणुमयं ॥६६॥
नामा यरिएहिं समं करियं विचारं वियाररहिएहिं ।
वसइहिं निवासो साहूणं ठविओ ठाविओ अप्पा ॥६७॥

इस लेख में वसतिवास[२] का जिक्र है पर शास्त्रार्थ एवं खरतर की गन्ध तक भी नहीं है—

---

१—खरतरों ने सुविहित शब्द का अर्थ फुटनोट में खरतर किया है यह एक भद्रिक जनता को धोखा देने को एक जाल रचा है। क्योंकि सुविहित शब्द मात्र से ही खरतर कहा जाय तो प्रत्येक गच्छ में सुविहित आचार्य हुए हैं तथा गणधर सौधर्म और आपकी सन्तान भी सुविहित ही थे उनको भी खरतर कहना चाहिये, फिर एक जिनेश्वर सूरि को ही खरतर क्यों कहा जाय ? २ दूसरे खरतरों ने 'वसतिवास' शब्द के साथ भी खरतर शब्द को जोड़ दिया है यह भी धोखे की ही बात है। यदि वसतिवास को ही खरतर कहा जाय तो भगवान भद्रबाहु को भी खरतर कहना चाहिये। कारण सबसे पहिले वसतिवास का उल्लेख उन्होंने ही किया था। खरतरों ! अब जमाना ऐसा नहीं है, कि तुम इस प्रकार जनता को भ्रम में डाल सको। क्या सैंकड़ों वर्षों में भी तुमको एक दो लेखक ऐसे नहीं मिले कि एक राजा की ओर से मिले हुए खरतर विरुद को स्पष्ट शब्दों में लिख सकें ? कि आपको इस प्रकार माया कपटाई एवं प्रपंच जाल रचना पड़ा है। ( लेखक )

कवि पल्ह का लेख—पहले भाग में तथा जिनपतिसूरि का लेख इसी भाग में मुद्रित हो चुका है।

सं० १२८५ श्री पूर्णभद्रगणि विनिर्मिते धन्यशालिभद्रचरित्रप्रान्ते—

श्रीमद्गुर्जरभूमिभूषणमणौ श्रीपत्तने पत्तने।
श्रीमद्दुर्लभराजराज पुरतो यश्चैत्यवासि द्विपान्॥
निर्लोड्यागमहेतु युक्तिनरवरैर्वासं गृहस्थालये।
साधूनां समतिष्ठपन्मुनि मृगाधीशोऽप्रधृष्यः परैः॥१॥
सूरिःस चांद्रकुलमानसराजहंसः,
श्रीमज्जिनेश्वर इति प्रथितः पृथिव्यां।
जज्ञेलसच्चरणरागभृदिद्ध,
शुद्धपक्षद्वयं शुभगतिं सुतरां दधानः॥२॥

सं० १२९३ वर्षे द्वादशकुलकविवरणे उपाध्यायः जिनपालः—

श्रीमच्चांद्रकुलांबरैकतरणेः श्रीवर्द्धमानप्रभोः,
शिष्यः सूरिजिनेश्वरो मतिवचः प्रागल्भ्यवाचस्पतिः।
आसी दुर्लभराजराजसदसि प्रख्यापितागारवद्—
वेश्मावस्थिति रागमज्ञ सुमुनिव्रातस्य शुद्धात्मनः॥ १॥

सं० १३१७ वर्षे श्रावकधर्म प्रकरण वृत्तिप्रान्ते लक्ष्मीतिलकोपाध्यायः—

प्रादोषानपहस्त्य कुग्रहकृतान् सिद्धान्तदृष्ट्यावसन्यध्वानं—
शुभसिद्धिलग्नमभितः प्रामाणिकत्वं नयन्।
स्थाने दुर्लभराजशक्रगुरुतां प्रापत्सुचन्द्रान्वयो—
त्तंसः सूरिजिनेश्वरः समभवत् त्रैविध्यवद्यक्रमः॥ १॥

षट स्थानक प्रकरणम् पृष्ठ २

खरतरों की ओर से उपरोक्त प्रमाण, वि० सं० ११२० से वि० सं० १३१७ तक के प्रमाणों में खरतर शब्द की गन्ध तक भी नहीं है। हाँ जिनेश्वरसूरि का पाटण जाना और पिछले लोगों का शास्त्रार्थ की कल्पना करना हम ऊपर लिख आये हैं, फिर समझ में नहीं आता है कि खरतर इन प्रमाणों से क्या सिद्ध करना चाहते हैं। इन प्रमाणों से तो उल्टा यह सिद्ध होता है कि वि० सं० १३१७ तक तो किसी भी खरतरों की यह मान्यता नहीं थी कि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में खरतर विरुद मिला था।

खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की खर ( कठोर ) प्रकृति के कारण हुई थी; जिस खरतर शब्द को वे अपना अपमान समझते थे। पर चौदहवीं शताब्दी में वह अपमानित खरतर-शब्द गच्छ के रूप में परिणित हो गया। जैसे ओसवालों में चंडालिया बलाई ढेढ़िया वग़ैरह जातियां हैं। जब इनके यह नाम पड़े थे तब तो वे नाराज होते थे पर बाद दिन निकलने से वे अपने हाथां से पूर्वोक्त नाम लिखने लग गये। यही हाल खरतरों का हुआ है जो खरतरशब्द अपमान के रूप में समझा जाता था, दिन निकलने से खरतर लोग अपने हाथों से लिखने लग गये। आगे चल कर एक प्रमाण और देखिये—

जिनवल्लभसूरि ने भगवान महावीर का गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक रूपी उत्सूत्र प्ररूपना करके अपना 'विधि मार्ग' नामका नया मत निकाला। आपके देहान्त के बाद इस नूतन मत की भी दो शाखा हो गई। एक जिनदत्तसूरि की खरतर शाखा और दूसरी जिनशेखरसूरि की रुद्रपाली शाखा।

अगर जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद मिला होता तो उन दोनों शाखाओं को खरतरशब्द के लिये एक सरीखा मान होता जैसे तपागच्छ में विजय और सागर साखा है पर तपागच्छ के लिये दोनों शाखाएँ को एकसा मान है परन्तु रुद्रपाली शाखा वाले खरतर नाम लेने में भी पाप समझते थे। कारण, खरतरशब्द की उत्पत्ति हुई थी जिनदत्तसूरि से, तब रुद्रपाली और खरतरों की खूब कटाकटी चलती थी इत्यादि।

देखिये रुद्रपाली मत्त में विक्रम को पन्द्रहवीं शताब्दी में एक जयानन्दसूरि हुये जिन्होंने आचारदिनकर नामक ग्रन्थ पर टीका रची है जिसमें क्या लिखते हैं:—

श्रीमज्जिनेश्वरः सूरि र्जिनेश्वर मतं ततः।
शरद्राका शशिस्पष्ट— समुद्र सदृशं व्यधात् ॥ १२ ॥
नवाङ्गवृत्तिकृत् पट्टेऽभयदेव प्रभुर्गुरोः।
तस्य स्तम्भनकाधीश माविश्चक्रे समं गुणैः ॥ १३ ॥
श्राद्ध-प्रबोधप्रवण स्तत् पदे जिनवल्लभः।
सूरिर्वल्लभतां भेजे, त्रिदशानां नृणामपि ॥ १४ ॥
ततः श्रीरुद्रपल्लीय—गच्छ संज्ञा लसद्यशाः।
नृपशेखरतां भेजे, सूरीन्द्रो जिनशेखरः ॥ १५ ॥

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में खरतरशब्द खूब प्रचलित हो चुका था। यदि जिनेश्वरसूरि से खरतर शब्दकी उत्पत्ति होती तो यह जयानन्दसूरि जिनेश्वर के साथ खरतर विरुद को लिखे बिना कभी नहीं रहता।

उपरोक्त खरतर मत के प्रमाणों से इतना तो स्पष्ट सिद्ध

हो चुका है कि खरतरशब्द की उत्पत्ति जिनेश्वरसूरि से नहीं, पर उनके बाद १२५ वर्ष के करीबन जिनदत्तसूरि से हुई है जिसको मैं आगे चल कर तीसरे भाग में बतलाऊँगा।

खरतरों ने केवल एक जिनेश्वरसूरि को ही खरतर कहने में बड़ी भारी भूल की है। यदि हमारे खरतर भाई अपने पूर्वजों के बनाये अर्वाचीन पट्टावल्यादि ग्रन्थों को ठीक पढ़ लेते तो खरतर विरुद की वरमाला जिनेश्वरसूरि के गले में नहीं डाल कर वर्द्धमानसूरि, उद्योतनसूरि ही नहीं पर गणधर सौधर्माचार्य्य और गुरु गौतम स्वामि के गले में डालने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते और इस बात के प्रमाण भी खरतरों के पास काफी थे और वे भी खास खरतरों के पूर्वजों के रचे हुये ग्रन्थों के कि जिसमें किसी खरतर को शंका करने का स्थान ही नहीं मिलता, जैसे कि:—

"श्रीवीरशासने क्लेशनाशने जयिनिक्षितौ
सुधर्मस्वाम्यपत्यानिगणाः सन्ति सहस्रशः ॥ १ ॥
गच्छः खरतरस्तेषु समस्ति स्वस्ति भाजनम्
यत्राभूवन् गुणजुषो गुरवो गतकल्मषाः ॥ २ ॥
श्रीमानुद्योतनः सूरिर्विर्द्धमानो जिनेश्वरः
जिनचन्द्रोऽभयदेवो नावाङ्ग वृति कारकः ॥ ३ ॥

श्रीआचारांग सूत्र दीपका—कर्त्ता जिनहंससूरि

इस लेख में जिनहंससूरि ने उद्योतनसूरि एवं वर्द्धमानसूरि को खरतर लिखा है। आगे और देखिये—

श्री महावीरतीर्थे श्रीसुधर्मस्वामि सन्ताने श्रीखरतरगच्छे श्रीउद्योतनसूरिः श्रीवर्द्धमानसूरिः श्रीजिनेश्वरसूरि श्रीजिनचन्द्र-

सूरि श्रीअभयदेवसूरि श्रीजिनवल्लभसूरि श्रीजिनदत्तसूरि श्री-जिनचन्द्रसूरि श्रीजिनपतिसूरि श्रीजिनेश्वरसूरि रित्यादियावत्त-त्पट्टालङ्कारश्रीजिनभद्रसूरि राज्येश्रीजेसलमेरूमहादुर्गे श्रीचचिगदेवे पृथ्वीशे सति सं० १५०५ वर्षे तपः पट्टिका कारिता

जैसलमेर का शिलालेख—प्र० प० पृष्ठ १८६

इस लेख में भी उद्योतनसूरि को खरतरगच्छी होना लिखा है

× × × ×

चन्द्रकुले श्रीखरतरविधिपक्षे—"श्रीवर्द्धमानाभिधसूरिराजो, जातः क्रमादर्बुदपर्व्वताग्रे। मन्त्रीश्वरश्रीविमलाभिधानः, प्राचीकटत् यद्वचनेन चैत्यमित्यादि ॥ १ ॥

'जैसलमेर का शिलालेख-प्र. प. पृष्ठ २८६

इस लेख में वर्द्धमानसूरि को खरतर होना लिखा है

प्रणमीवीरजिणेसरदेव, सारइ सुरनर किन्नर सेव ।
श्रीखरतर गुरु पट्टावली नाममात्र प्रभणु मन रली ॥
उदयउ श्रीउद्योतनसूरि, वर्द्धमान विद्याभरपुरी ।
सूरि जिनेश्वर सुरतरु समो श्रीजिनचन्द्रसूरिश्वर नमई ॥

'खरतर पट्टावली जै. ऐ. का. स. पृष्ठ २२७

खरतर गच्छि वर्द्धमान, जिनेश्वरसूरि गुरो ।
अभयदेवसूरि जिनवल्लभजिनदत्तसूरि पवरो ॥

ख, प. जै. ऐ. का० स० पृष्ठ ११

सुविहिय चुडामणि मुणिणो खरतर गुरुणो थुणस्सामि ।
श्रीउज्जोयण बद्धमाण सिरि सूरिजिणेसरो ॥

ख. प. जै. ऐ. का. स. पृष्ठ २४

पणमवि केवल लच्छिवरं चउवीसमउ जिणचन्दो ।
गाइसु खरतर जुगपवर, आणिसुमन आनन्दो ।
अहे पहिलज जुगवर जगि जयउ श्रीसोहमस्वामि

ख. प. जैन ऐ. का. स. पृष्ठ २१५

पणमिव वीर जिनन्द चन्द कपसुकय पवेसो
खरतर सुरगुरु गच्छ स्वच्छ गणहर पभणेसो
तसु पय पंकय भमर समरसजि गोयमगणहर
तिणि अनुकमी सिरि नेमिचंद मुणिगुणिगणमुणिहर

ख. प. जैन ऐ. का. सं. पृष्ठ २१४

उपरोक्त खरतरों के पूर्वजों के प्रमाणों को अधुनिक खरतर सत्य समझते हैं तो केवल जिनेश्वरसूरि को ही खरतर विरुद मिला कहना असत्य साबित होता है क्योंकि जिनेश्वरसूरि के गुरु वर्द्धमानसूरि और वर्द्धमानसूरि के गुरु उद्योतनसूरिभी खरतर थे, इतना ही क्यों पर सौधर्म और गौतम गणधर भी खरतर ही थे फिर यह खरत्व की वरमाला एक जिनेश्वरसूरि के गले में ही क्यों डाली जाती है ?

यदि खरतर लोग एक क़दम आगे बढ़ जाते तो वे भगवान महावीर को भी खरतर बना सकते थे, पर समझ में नहीं आता है कि खरतरों ने यह भूल क्यों की होगी ?

वाहरे खरतरो ! मिथ्या लेख लिखने की भी कुछ हद-मर्याद होती है, पर तुम लोगों ने तो मर्यादा का भी उल्लंघन कर इस प्रकार मनः कल्पित लेख लिख डाला है कि जिसके न तो कोई-सिर है और न कोई पैर ही है ।

बिचारे खरतरों में इतनी अकल ही कहां थी कि हम जिनेश्वर सूरि के लिए खरतर विरुद का कल्पित कलेवर तैयार करते हैं तो पहिले इनके समय का तो ठीक मिलान कर लें कि बाद में हमें शर्मिन्दा हो नीचा तो न देखना पड़े ? देखिये खरतरों के खरतर विरुद समय जैसे कि—

सुविहित नइ मट्टपति हुउ, गयं गणि वसिंरा विव्य दूरा ।
सूरि जिणेसर पामिउ, जग देखत जय जय बादरा ।।
दस सय चउवीस हिं गए उथापिउ चेइय वासुरा ।
श्रीजिणशासण थापिउ, वसतिहिं सुविहित मुणि वासुरा।।१४।।

ख० प० ए० जं० का० सं० पृष्ठ ४५ ।।

दस सय चउवीसेहिं नयरि पट्टण अणहिल्लपुरि ।
हअउवाद सुविहित्थ चेइवासी सुवहु परिं ।
दुल्लह नरवइ सभा समख्य जिण हेलिहिं जिन्नउ ।
चेइवास उत्थापि देस गुज्जर हव दिन्नउ ।।
सुविहित गच्छ खरतर विरुद दुल्लह नरवइ तिहिं दिहइ
सिरि वद्धमाण पट्टिहिं तिलउ जिणेसरसूरि गुरु गहगहई ।

"खरतर पट्टावली पृष्ठ ४४ ।।"

१०२४ वर्षे श्रीमदणहिल्ल पतने दुर्ल्लभ राज समीक्ष इत्यादि

"प्राचीन खरतर पट्टावली"

उपरोक्त प्रमाणों से खरतरों का स्पष्ट मत है कि जिनेश्वर-सूरि का शास्त्रार्थ और खरतर विरुद मिलने का समय वि० सं० १०२४ का था पर यह बात न जाने किस बेहोशी में लिखी गई थी क्योंकि वि० सं० १०२४ में न तो जिनेश्वरसूरि का जन्म हुआ

था और न राजा दुर्लभ संसार में आया था। शायद यह बात स्वप्न की हो और वह स्वप्न की बात लिपि बद्ध कर दी हो या किसी पूर्व भव में शास्त्रार्थ हुआ हो।

खरतरों के अज्ञान के पर्दे कुछ दूर हुए तब जाकर उनको भान हुआ कि हमारे पूर्वजों की भूल जरूर हुई है; अतः इस भूल को सुधारने के लिए आधुनिक खरतरों ने इसका एक रास्ता ढूँढ़ निकाला है कि सं० १०२४ में १००० तो ठीक है पर ऊपर के २४ का भाव यह है कि बीस क चार गुना करने से ८० होता है। अतः शास्त्रार्थ का समय १०८० का था। पर इस रास्ते में भी खरतरों के पूर्वजों ने ऐसे रोड़े डाले हैं कि बिचारे आधुनिक खरतर एक कदम भी आगे नहीं रख सकते हैं देखिये वह कांटे हैं या रोड़े:—

श्रीपत्तने दुर्ल्लभराज राज्ये विजित्य वादे मठ्ठवासि सूरीन
वर्षऽब्धि(४) पक्ष(२) भ्रंशशि(०)(१) प्रमाणे लेभेऽपियैः खरतरोविरुद ॥

"वा० पूर्णं० सं० खरतर पटावली पृष्ट ३"

इस खरतर पट्टावलीकार ने संकेत शब्द में स्पष्ट १०२४ का समय लिखा है जिसको आधुनिक खरतर किसी भी उपाय से १०८० कर ही नहीं सकते हैं। क्योंकि 'दससय चउबीस' के लिये तो विकल्प कर दिया कि २० को चार गुना करने से ८० होता है पर 'वर्षेऽब्धि(४) पक्ष(२) भ्रशशि(०)(१) ( १०२४ ) इसके लिये क्या करेंगे ? अर्थात् खरतरों के पूर्वजों के मतानुसार जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ एवं खरतर विरुद का समय वि. सं. १०२४ का मानना ही पड़ेगा और १ २४ में न हुआ था दुर्लभ राजा का जन्म और न हुआ था जिनेश्वरसूरि का अवतार, तो शास्त्रार्थ और खरतर विरुद का तो पता ही कहाँ था ?

अब रहा दूसरा विकल्प वि. सं. १०८० का। यह भी कल्पना मात्र ही है कारण वि. सं० १ ८० में जिनेश्वरसूरि जावलीपुर में स्थित रह कर आचार्य हरिभद्रसूरि के अष्टकों पर वृत्ति रच रहे थे, ऐसा खुद जिनेश्वरसूरि ने ही लिखा है। तब दुर्लभ राजा का राज वि. सं० १०६६ से १०७८ तक रहा। ×

× खरतरों ने पाटण में दुर्लभ राजा का राज वि. सं० १०६६ से १०७८ होने में कुछ शंका करके एक गुजराती पत्र का प्रमाण दिया है कि सं० १०७८ तक का कहना शंकाप्रद है इत्यादि। यह केवल भद्रिकों को भ्रम में डालने का जाल है। क्योंकि आज अच्छे २ विद्वानों एवं संशोधकों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज ठीक वि. सं० १०७८ तक ही रहा था, इसके लिए देखो—पं० गौरीशंकर हीराचन्द् ओझा का लिखा सिरोही राज का इतिहास-आपने दुर्लभ का राज सं० १०७८ तक का लिखा है तथा गुर्जरवंश भूपावली में दुर्लभ का राज वि. सं० १०७८ तक ही रहा था बाद उसका पट्टधर भीम राजा हुआ। अब खरतरों को कुछ भान होने लगा तो उन्होंने दुर्लभ के स्थान में भीम लिखना शुरु किया है जैसे खरतर यति रामलालजी ने १०८० में दुर्लभ (भीम) और खरतर-वीरपुत्र आनन्दसागरजी ने श्री कल्पसूत्र के हिंदी अनुवाद में भी वि. सं० १०८० में राजा दुर्लभ (भीम) ऐसा लिखा है। इससे यही सिद्ध होता है कि वि. सं० १०८० में पाटण में दुर्लभ का राज नहीं किंतु राजा भीम का राज था। पर इनके पूर्वजों ने १०८० राजा दुर्लभ का राज लिख दिया अतः उन्होंने दुर्लभ (भीम) अर्थात् दुर्लभ का अर्थ कोष्ठ में भीम कर दिया। इस कामतलब यही है कि सं० १०८० में राजा दुर्लभ का नहीं पर राजा भीम का ही राज था। अतः खरतरों के लेख से खरतरों की पट्टावलियां जिसमें जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ एवं खरतर विरुद का समय वि. सं० १०२४ तथा १०८० का ही लिखा है वह कल्पित एवं मिथ्या सावित होती है। अब इस विषय में दूसरे प्रमाणों को जरूरत ही नहीं है।

अर्थात् १०८० में दुर्लभ राजा का राज ही पाटण में नहीं था फिर शास्त्रार्थ किसने किया और खरतर विरुद किसने दिय ? शायद राजा दुर्लभ मर कर भूत हो गया हो और वह दो वर्ष से वापिस आकर जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद दे गया हो ? वरन् खरतरों का लिखना बिल्कुल मिथ्या है और यह बात आचार्य प्रभाचन्द्रसूरि के लिखे 'अभयदेयसूरि प्रबन्ध' और संघतिलकसूरि के लिखे 'दर्शन सप्तिका' ग्रन्थों के लेख से स्पष्ट सिद्ध भी हो चुकी है कि जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे, पर न तो वे राजा दुर्लभ की सभा में पधारे न किसी चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और न राजा दुर्लभ ने जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद ही दिया था। किन्तु खरतर शब्द की उत्पत्ति तो जिनदत्तसूरि की खर-प्रकृति से हुई थी और खरतर शब्द उस समय अपमान के रूप में समझा जाता था। यही कारण है कि कई वर्षों तक इस खरतर शब्द को किसी ने भी नहीं अपनाया। बाद दिन निकलने के जिनकुशलसूरि के समय वह अपमान जनित खरतर-शब्द गच्छ के रूप में परिणित हो गया। जैसे ओसवालों में ढेढ़िया बलाई चंडालियादि जातियां हैं वे नाम उत्पन्न के समय तो अपमान के रूप में समझे जाते थे पर दिन निकलने के बाद वे ही नाम खुद उन जातियों वाले ही लिखने लग गये कि हम ढेढिये, बलाइ चंडालिए हैं। यही हाल खरतरों का हुआ है।

अन्त में मैं अपने पाठकों से इतना ही निवेदन करूंगा कि आप सज्जनों ने खरतरमतोत्पत्ति भाग पहिला दूसरा आद्योपान्त पढ़ लिया है जिसमें मैंने प्रायः खरतरमतानुयायियों के पुष्कल प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वि. सं० १०८० में

राजा दुर्लभ का पाटण में राज तो क्या पर उसका अस्तित्व भी नहीं था। हाँ इस समय के पूर्व कभी जिनेश्वरसूरि पाटण गए थे। ऐसा प्रभाविकचरित्र और दर्शनसप्ततिका ग्रन्थों से पाया जाता है, पर न तो वे राजसभा में गए न किसी चैत्यवासियों के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ और न किसी राजा ने खरतरविरुद ही दिया था। खरतरोंने केवल कँवला और खरतर शब्द के लिये यह कपोलकल्पित कल्पना कर डाली है पर इस इतिहास युग में ऐसी कल्पना कहाँ तक चल सकती है ? आखिर सत्य के सूर्य के सामने ऐसे मिथ्या लेख रूपी अन्धकार को पलायन होना ही पड़ता है जिसको मैंने ठीक तौर से बतला दिया है।

अब पाठकों को यह जानने की उत्कंठा अवश्य होगी कि खरत्तर शब्द की उत्पत्ति कब, क्यों और किस पुरुष द्वारा हुई ? इसके लिए मैं खरतरमतोत्पत्ति तीसरे भाग को लिख कर शीघ्र ही आपकी सेवा में उपस्थित करूंगा, जिसके पढने से आपको भली भांति रोशन हो जाएगा कि खरतरमत की उत्पत्ति क्यों और कैसे हुई है ?

इति शुभम्

बाबू दीनदयाल 'दिनेश' द्वारा आदर्श प्रेस, अजमेर में छपी–१०-३९.

श्रीमद्रत्नप्रभसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः

# खरतर-मत्तोत्पत्ति भाग तीसरा

'खरतर-मत्तोत्पत्तिभागपहिले-दूसरे' में प्रायः खरतरानुयायियों के प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर बतलाया है कि खरतरमत की उत्पत्ति न तो जिनेश्वरसूरि द्वारा हुई है और न अभयदेवसूरि ही खरतर थे। अब तीसरे भाग में यह बतलाया जायगा कि खरतरमत की उत्पत्ति किस समय, किस कारण और किस पुरुष द्वारा हुई थी ?

खरतरमत की नींव डालनेवाला मूल पुरुष था जिनवल्लभसूरि अतः पहले जिनवल्लभसूरी का संक्षिप्त परिचय करवा देना बहुत जरूरी है।

जिनवल्लभ कौन था इस विषय का सबसे प्राचीन उल्लेख "गणधरसार्द्धशतक" नामक ग्रन्थ में मिलता है जिसके रचियता जिनदत्तसूरि हैं और उस ग्रन्थ पर जिनपतिसूरि के शिष्य सुमति गणि ने वृहद्वृत्ति रची हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में जिनवल्लभ के विषय में लिखा है कि :—

"इतश्च तस्मिन् समये आसिकाभिधानदुर्ग्गवासी कूर्च्चपुरीय जिनेश्वराचार्य्यआसीत्,तत्र ये श्रावकपुत्रास्ते सर्वेऽपि तस्य मठे पठन्ति, तत्र च जिनवल्लभ नामा श्रावक

पुत्रोऽस्ति, तस्य जनको दिवंगतः, तं जननी प्रतिपालयति, पाठयोग्यश्चासौ प्रक्षिप्तः तयातत्र मठे पठितुं × × × ततस्तं द्राक्षाखर्जूराक्षोटकखण्डमण्डकमोदकादिदानपुरस्सरं वशीकृत्य तन्मातरं मधुरवचनैः संबोधयामास, यदुत एष त्वदीयपुत्रोऽत्यन्तप्राज्ञः मूर्तिमान् सात्त्विकः, किं बहुना ?, आचार्य पदयोग्योऽस्ति, तदेनमस्मभ्यं प्रयच्छ, एषा तावकीना देव कुलिका अन्येषां च निस्तारको भविष्यतीत्यत्रार्थे नान्यथा किंचिद्वक्तव्यमित्यभिधाय द्रम्मशतपंचकं तस्या हस्ते प्रक्षिप्य क्षिप्रं दिदीक्षे, ( [१]गणधर सार्द्ध शतक )

प्र० प० पृष्ठ २३१

अर्थात आसिका दुर्ग में कुर्चपुरागच्छीय जिनेश्वरसूरि चैत्यवासी आचार्य रहता था।उनके उपाश्रय में बहुत से श्रावकों के लड़के पढ़ते थे। उसमें एक वल्लभ नामक लड़का ऐसा भी था कि जिस का पिता तो गुजर गया था और उसकी माता ने लड़के को वहाँ पढ़ने के लिये भेजा था × × × जिनेश्वरसूरि ने उस बिना बाप के लड़के को दाखें खजूर मोदक वगैरह से प्रलोभन कर शिष्य बनाने का निश्चय कर लिया। जब उसकी माता ने कुछ कहना सुनना किया तो उसको ५०० द्रव्य मूल्य का देकर उस लड़के को

---

१ जिनदत्तसूरि का स्वर्गवास वि० सं० १२११ में हुआ जिन्होंने गणधर सार्द्धशतक ग्रन्थ की रचना की और वि० सं० १२२३ में जिनपतिसूरि को सूरि पद मिला और आपके शिष्य सुमति गणि ने गणधर सार्द्धशतक पर बृहद्वृत्ति रची. अतः मूलग्रन्थ और वृतिका समय बिलकुल समीप का समय है।

दीक्षा दे दी और उसका नाम वल्लभ रख दिया। इससे पाया जाता है कि वल्लभ ने वैराग्य से दीक्षा नहीं ली पर केवल दाखें खजूरादि खाने पीने के लिये ही दीक्षा ली थी तथा उस लड़के को माता के भी एक छोटासा लड़के का मूल्य पाँच सौ द्रव्य हाथ लग गया। इस प्रकार मूल्य के शिष्यों से शासन को क्या २ नुकसान होताहै वह आगे चल कर आप स्वयं पढ़लेंगे।

जिस गुरुने वल्लभ को दीक्षा देकर पढ़ा लिखा कर थोड़ासा होशियार किया, बाद उसी गुरुसे क्लेश कर गुरु को छोड़ कर वल्लभ वहाँ से निकल गया। कहा है किः—

जिणवल्लह कोहाओ कुच्चयरगणाओ खरयरया[१] (वृद्ध-सं० पट्टावली)—जिनवल्लभ क्रोधादितिवचनेन जिनवल्लभो मूलोत्सूत्रप्ररूपको दर्शितः क्रोध शब्देन निजगुरुणा सह कलहः सूचितः तेनायं निजगुरुणा चैत्यवासी जिनेश्वरेण सह कलहं कृत्वा निर्गतो न पुनर्वैराग्यरङ्गात्।

प्रवचन परीक्षा पृष्ठ ३१४

मूल्य का खरीदा हुआ शिष्य इससे अधिक क्या कर सकता है? खैर, वल्लभ गुरुको छोड़ कर खरतरों के मतानुसार अभयदेवसूरि के पास आया। अभयदेवसूरि ने अपनी उदारवृत्ति से वल्लभ को थोड़ा बहुत आगमों का ज्ञान करवाया पर उस समय अभयदेवसूरि

---

१ जिनवल्लभ ने कुर्च्चपुरा गच्छ को छोड़ कर अपना विधिमार्ग नामक नया मत निकाला। आगे चलकर उस विधिमार्ग का रूपान्तर नाम खरतर कहलाया। अतः पट्टावली कार का आशय खरतर शब्द से विधिमार्ग का ही समझना चाहिये।

को यह स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि मैं आज इस चैत्यवासी वल्लभ को ज्ञान देता हूँ वह आगे चल कर 'पयपानं भुजंगानां केवलं विष वर्द्धनम्' अर्थात् वल्लभ इस प्रकार उत्सूत्र की प्ररूपना कर शासन में भेद डाल कर नया मत निकालेगा।

एक समय का जिक्र है कि अभयदेवसूरि का अन्त समय नजदीक था उस समय जिनवल्लभ ने सूरि बनने की कोशिश की होगी, परन्तु :—

"यतो देवगृहनिवासी शिष्य इति हेतोर्गच्छस्य सम्मतं न भविष्यतीति ततो गच्छाधारको वर्द्धमानाचार्य्यः स्वपदे निवेसितः"

गणधर सार्द्धशतक प्र० प० पृष्ठ २३५

इसमें स्पष्ट लिखा है कि जिनवल्लभ चैत्यवासी आचार्य्य का शिष्य होने से गच्छ वाले वल्लभ को पदाधिकार देने में सम्मत नहीं होंगे, अतः अभयदेवसूरि ने अपने पट्टधर वर्द्धमानसूरि को आचार्य बना कर स्वर्गवास कर दिया।

इसके साथ ही ग्रन्थकर्त्ता ने यह भी लिखा है कि

"जिनवल्लभगणेश्च क्रियोपसंपदं दत्तवन्त"

ग० सा० शतक" प्र० प० पे० २३५

यह कदापि संभव नहीं होता है कारण यदि अभयदेवसूरि ने वल्लभ को उपसंपद की क्रिया करवादी होती तो गच्छवाले उसको चैत्यवासी का शिष्य कह कर असम्मत कदापि नहीं होते। दूसरे अभयदेवसूरि अपनी चिरआयुः में ही वल्लभ को क्रियोपसंपद नहीं करवाई तो अन्त समय तो गच्छवाले जिनवल्लभ से

खिलाफ होते हुये पूर्वोक्त क्रिया कैसे करा सकते। देखिये इस विषय के और भी प्रमाण मिलते हैं।

"जिनवल्लभस्तावत्क्रीतकृतोऽपिचैत्यवास्यपिप्रव्रज्योपस्थानोपधानशून्यःनहींजिनवल्लभेनकस्यापिसंविग्नस्यंपार्श्वेप्रव्रज्यागृहीतातदभावाच्च न केनाप्युपस्थापितःउपस्थापनाऽभावान्नोपधानमपिआवश्यकादि श्रुताराधन तपो विशेष योगानुष्टनाद्यपि न जातम्।

प्र० प० पृष्ट २६१

इस प्रमाण से भी यही साबित होता है कि जिनवल्लभ ने चैत्यवासी गुरु को छोड़ कर आने के बाद किसी के भी पास पुनः दीक्षा नहीं ली थी। यदि जिनवल्लभ किसी संविग्नाचार्य के पास दीक्षा लेकर योगद्वाहन कर लेते तो अभयदेवसूरि के साधु यह कह कर वल्लभ का विरोध नहीं करते कि यह चैत्यवासी गुरु का शिष्य है।

कितनेक लोग गच्छराग के कारण यह भी कहते हैं कि अभयदेवसूरि अपनी अन्तिमावस्था में प्रश्नचंद्रसूरि को एकान्त में कह गये थे कि मेरे बाद वल्लभ को आचार्य बना देना इत्यादि।

पर यह बात बिल्कुल बनावटी एवं जाली मालूम होती है, कारण अभयदेवसूरि अपनी विद्यमानता में वर्द्धमानसूरि को अपने पट्टधर बना गये तो फिर एकान्त में प्रश्नचंद्रसूरि को क्यों कहा था कि वल्लभ को मेरा पट्टधर बनाना? शायद इस लेख के लिखने वाले का इरादा अभयदेवसूरि पर मायाचारी या समुदाय में फूट डलवाने का कलंक तो लगाना नहीं था न?

जिनवल्लभ ने न ली किसी के पास दीक्षा न किया योगोद्वाहन, अतः वह मण्डली में बैठने योग्य भी नहीं था तो उसको सूरि पद देकर अभयदेवसूरि का पट्टधर कैसे बनाया जा सकता ?

खैर प्रश्नचन्द्रसूरि को एकान्त में अभयदेवसूरि कह भी गये हों तो फिर प्रश्नचंद्रसूरि ने वल्लभ को आचार्य क्यों नहीं बनाया ? शायद यह कहा जाय कि प्रश्नचंद्रसूरि की आयुः अधिक नहीं थी और वे देवभद्राचार्य को कह गये थे कि वल्लभ को अभयदेवसूरि का पट्टधर बना देना, पर देवभद्राचार्य का दीर्घ आयुष्य होने पर भी २९ वर्ष तक वल्लभ अकेला भ्रमण करता रहा, पर देवभद्र ने उनको आचार्य नहीं बनाया इसका क्या कारण था ? वास्तव में न तो अभयदेवसूरि ने प्रश्नचंद्रसूरि को कहा था और न प्रश्नचंद्रसूरि ने देवभद्र को ही कहा था। केवल पिछले लोगों ने जिनवल्लभ के निगुरापने के कलंक को छिपाने के लिये यह झूठ-मूठ ही लिख डाला है कि अभयदेवसूरि ने प्रश्नचंद्र को एकान्त में कहा और प्रश्नचंद्रसूरि ने देवभद्र को कहा कि वल्लभ को अभयदेवसूरि का पट्टधर बनाना जिससे अभयदेवसूरि के पट्टपर दो आचार्य होकर आपस में फूट पड़ जाय ? क्योंकि अभयदेवसूरि के पट्टधर वर्द्धमानसूरि विद्यमान थे और यह बात स्वयं वल्लभ ने भी लिखी है।

अभयदेवसूरि के स्वर्गवास के बाद २९ वें वर्ष अर्थात वि० सं० ११६४ में वल्लभ चित्तौड़ गया था और वहां वल्लभ ने चित्तौड़ के किले पर चतुर्मास किया। वहां पर वल्लभ ने क्या किया जिसके विषय में खास खरतरों के माननीय ग्रन्थ गणधर सार्द्धशतक अन्तर्गत प्रकरण व वृहद्वृति बतलाती है किः—

"तत्र कृत चातुर्मासिककल्पानां श्रीजिनवल्लभवाचनाचार्याणामाश्विनमासस्यकृष्णपक्षत्रयोदश्यांश्रीमहावीरदेवगर्भापहारकल्याणकंसमागतं। ततःश्राद्धानांपुरोभणितंजिनवल्लभगणिना। भोःश्रावका! अद्यश्रीमहावीरस्यषष्ठंगर्भापहारकल्याणकं"पंचहत्थुत्तरेहोत्था साइणा परिनिव्वुडे" इति प्रकटाक्षरैरेवसिद्धान्तेप्रतिपादना दन्यच्चतथाविधंकिमपिविधिचैत्यंनास्ति,ततोऽत्रैव चैत्यवासिचैत्येगत्वायदिदेवावंद्यंतेतदाशोभनंभवति, गुरुमुखकमलविनिर्गतवचनाराधकैःश्रावकैरुक्तं-भगवन् यद्युष्माकं सम्मतंतत्क्रियते,ततः सर्वेपौषधिकाः—श्रावका सुनिर्मलशरीरानिर्मलवस्त्रागृहीतनिर्मलपूजोपकरणा गुरुणासहदेवगृहेगंतुंप्रवृत्ताः। ततोदेवगृहस्थितयार्यिकया गुरुसमुदायेनागच्छतो गुरून्दृष्ट्वा पृष्टं को विशेषोऽद्यकेश्राद्धनापि कथितं। वीरगर्भापहारषष्ठकल्याणककरणार्थ मेते समागच्छंति, तया चिंतितंपूर्वं केनापि न कृतमेतदेतेऽधुनाकरिष्यँतीतिन युक्तँ। पश्चात्सँयतीदेवगृहद्वारे पतित्वास्थिताद्वारप्राप्तान् प्रभूनवलोक्योक्तमेतया दुष्टचित्तया मया मृतया मृतयायदि प्रविशत तादृग प्रीतिकं ज्ञात्वा निवर्त्य स्वस्थानं गताः पूज्याः! श्राद्धैरुक्तं भगवन्नस्माकं बृहत्तराणि सदनानि संति, ततएकस्यगृहोपरिचतुर्विंशतिपट्टकंधृत्वादेववंदनादिसर्वंधर्म--प्रयोजनंक्रियते, षष्ठकल्याणकमाराध्यते। गुरुणाभणितंतत्कि मत्रो युक्तं। तत आराधितं विस्तरेण कल्याणकं"

गणधर सार्द्धशतक अन्तर्गत प्रकरण पृष्ठ १८

यही बात जिनपतिसूरि का शिष्य सुमतिगणि ने गणधर सार्धशतक की वृहद् वृति में लिखी है:—

इसका भावार्थ यह है कि जिनवल्लभ को आश्विनकृष्ण त्रयोदशी के दिन श्री महावीर के गर्भापहारकल्याणक का लेख प्राप्त हुआ। तब श्रावकों के सामने जिनवल्लभ कहने लगा भो! श्रावको! आज श्रीमहावीर देव का गर्भापहार नामक छट्ठाकल्याणक जैसे 'पंचहत्थुत्तरे होत्था साइणापरिनिव्वुडे' ऐसा प्रकटअक्षर सिद्धान्त में प्रतिपादितहै इसकी आराधन विधिके लिये यहांविधि चैत्य तो है नहीं इसलिये चैत्यवासियों के * चैत्य (मंदिर) में चल कर यदि देववंदन करें तो अच्छा होगा। गुरुमुख के वचन सुन कर श्रावकों ने कहा कि आप करें उसमें हमारी सम्मति है। बाद गुरु आदेश से वे सब श्रावक निर्मलशरीर, निर्मलवस्त्र और निर्मल पूजोपकरण लेकर गुरु के साथ मन्दिर जाने को प्रवृतमान हुये, पर उस मन्दिर में एक आर्यका थी उसने श्रावकों के साथ गुरु को आते हुए देख कर पूछा कि आज क्या विशेषता है? इस पर किसी ने कहा कि वीर के गर्भापहार नामक छटे कल्याणक की आराधना के लिये हम सब आ रहे हैं। इस पर उस आर्यका ने सोचा कि पूर्व किसी ने भी छट्टाकल्याणक न तो कहा और न देववन्दनादि किया है अतः यह अयुक्त है। जब यह बात अन्य संयतियों को खबर हुई तो वे लोग देवगृहद्वार पर आकर खड़े

---

*जिस चैत्य को जिनवल्लभ ने अवन्दनीक ठहराया था आज उस चैत्य को वन्दन करने का उपदेश दे रहा है।

हो गये और जिनवल्लभ की उत्सूत्र प्ररूपना का सख्त विरोध करने लगे इत्यादि। फिर भी प्रभु के दर्शन करने पर वे शान्त होकर अपने २ स्थान पर चले गये। बाद श्रावकों ने गुरू से प्रार्थना की कि अपना मकान बहुत बड़ा है उस पर एक चौबीसी पट्ट रख कर वहाँ ही सब क्रिया किया करें इत्यादि।

इस लेख से साबित होता है कि जिनवल्लभ ने महावीर के गर्भापहार रूप छट्ठा कल्याणक की चित्तौड़ में नयी प्ररूपना की थी जो वल्लभ के निम्नलिखित वचन इसको साबित कर रहे हैं। जैसे कि:—

१—'समागतं' यह शब्द बतला रहा है कि गर्भापहार का कल्याणक केवल एक वल्लभ को ही मिला। वह भी उसी दिन क्योंकि जिनवल्लभ की उस समय करीबन ६५ वर्ष की उम्र होगी जब उसने बचपन में ही दीक्षा ली तो ५५-६० वर्ष की दीक्षा पाली और कई बार कल्पसूत्र भी बांचा होगा उसमें तो उनको गर्भापहार कल्याणक नहीं मिला; केवल उस दिन ही 'समागत' हुआ अर्थात मिला अतः यह उत्सूत्र प्ररुपना उसी दिन की गई थी।

२—'प्रकटाक्षरैरेव' यह शब्द बतला रहा है कि भगवान सौधर्मस्वामि से अभयदेवसूरि तक सैंकड़ों आचार्य हुये उन्होंने "पंचहत्थुत्तरे होत्था साइणपरिनिव्वुडे" यह अक्षर नहीं देखे हों और ५५-६० वर्ष तक वल्लभ ने भी नहीं देखे, परन्तु आश्विन कृष्णत्रयोदशी के दिन वल्लभ को ही वे प्रकटाक्षर दीख पड़े?

३—'भोः श्रावका! अद्य महावीरस्य षष्टं गर्भा-

पहार कल्याणकं' इसमें अथ शब्द यह अर्थ बतला रहा है कि गर्भापहार को कल्याणक उसी दिन वल्लभ ने माना है तब ही तो श्रावकों की सम्मति लेनी पड़ी वरना सम्मति की क्या जरूरत थी।

४—वहां विधिचैत्य न होने पर अविधिचैत्य (चैत्यवासियों के चैत्य में) देववन्दन करना यह भी बतला रहा है कि यह प्रवृति वल्लभ ने नयी चलाई थी।

५—मंदिर में रही आर्यका पूछती है कि आज क्या विशेष है ? जब यह प्रवृति नई नहीं होती तो आर्यका को इतना पूछने की जरूरत ही क्या थी ? जब आर्यका को मालूम हुआ कि गर्भापहार नामक छट्टा कल्याणक का देववंदन करेगा तो उसने सोचा की इसके पूर्व गर्भापहार को किसी ने भी कल्याणक नहीं माना, अतः जिनवल्लभ ने यह नयी प्ररूपना क्यों की है।

६—'पूर्व केनापि न कृत मेतदेतेऽधुना करिष्यंतीति न युक्तं' इससे भी निश्चय होता है कि पूर्व किसी ने भी गर्भापहार को कल्याणक नहीं माना था इसलिये ही आर्यका ने कहा था कि अयुक्तं—

७—'पश्चात् संयति देवगृहद्वारे पतित्वास्थिता' यह शब्द बतला रहा है कि वल्लभ की यह प्रवृति उत्सूत्र रूप नयी थी कि सब संयति इसका विरोध करने को मंदिर के द्वार पर आकर उपस्थित हो गये।

इन उपरोक्त शब्दों के आशय से पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि वल्लभ ने महावीर के गर्भापहार नामक छट्टा कल्याणक

की उत्सूत्र प्ररूपना कर तीर्थंकर गणधर और पूर्वाचार्य्यों की आज्ञा का भंग कर वज्र पाप की पोट अपने सिर पर उठाई है, इतना ही क्यों पर कई भद्रिक जीवों को भी अपने अनुयायी बना कर उनको भी संसार में डुबा दिया है ।

अभयदेवसूरयः स्वर्गंगताः प्रसन्नचन्द्राचार्येणापि प्रस्तावाऽभावात् गुरोरादेशो न कृतः केवलं श्रीदेवभद्राचार्याणामग्रे भणित सुगुरूपदेशतः प्रस्तावेयुष्माभिः सफली आर्यः इतश्च पत्तनादात्मानातृतीयः सिद्धान्तविधिना जिनवल्लभगणिश्चित्र-कूटे विहृतः तत्र चामुंडाप्रतिबोधता साधारणश्राद्धस्य परिग्रह-प्रमाणप्रदत्तं श्रीमहावीरस्य गर्भापहाराऽभिधं षष्टंकल्याणकं प्रकटितं क्रमेण साधारण श्रावकेण श्रीपार्श्वनाथ श्रीमहावीर-देवगृहद्वयं कारितं

गणधरसार्द्ध शतक लघुवृति

इस लेख में स्पष्ट लिखा है कि जिनवल्लभ ने चित्तौर में जाकर चामुंडादेवी को बोध दिया साधारण श्रावक को परिग्रह का परिमाण कराया और महावीर का गर्भापहार नामक छठा कल्याणक प्रगट किया इत्यादि । इससे निश्चय हो जाता है कि जिनवल्लभ ने यह जैनआगमों के एवं पूर्वाचार्य्यों की आज्ञा को भंग कर गर्भापहार नाम का छठा कल्याणक प्रगट किया जिसको उत्सूत्र प्ररूपना कही जा सकती है । यदि ऐसा न होता वो प्रगट शब्द की जरूरत ही क्या थी ।

असहायणाऽविविहि पसहिउं जो न सेस सूरीहिं ।
लोअणपहेविवच्छइ पुण जिणमयण्णूणं ॥१२२॥

व्याख्या । ततोयेन भगवता असहायेनापि एकाकिनापि परकीय सहाय निरपेक्षं अपिविंष्मये अतीवाश्चर्य मेतत्विधि रागमोक्तः षष्ठकल्याणक रुपश्चेत्यादि विषयः पूर्व प्रदर्शितश्च प्रकारः प्रकर्षेणेदमित्थमेव भवति योऽत्रार्थेऽसहिष्नुः सवाव-दीत्विति स्कंधास्फालनपूर्वकं साधितः सकल प्रत्यक्षं प्रकाशितः यो नशेष सूरीणामज्ञात सिद्धान्त रहस्यानामित्यर्थः लोचन-यथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तांश्रुतिपथे व्रजतियाति । उच्यते पुन-र्जिनमतज्ञैर्भगवद्वचन वेदिभिरिति ।

गणधरसार्द्धशतक मूलगाथा १२२ तथा वृहद् वृत्ति

इस लेख में भी साफ २ लिखा है कि जिनवल्लभ ने चितौर में कंधा ठोक कर महावीर के गर्भापहार नामक छठा कल्याणक की प्ररूपना की यदि यह प्रवृति नई न होती तो जिनवल्लभ को कंधे ठोकने की क्या जरूरत थी, जब खास खरतरों का माननीय ग्रन्थ इस बात को प्रमाणित कर रहा है तो फिर दूसरे प्रमाणों की आवश्यता ही क्या है ? यह तो हुए खरतरों के घर के प्रमाणों की बात । अब आगे चलकर हम जैन शास्त्रों की ओर दृष्टिपात कर देखेंगे कि जैनागमों में भगवान् महावीर के कल्याणक पांच बतलाते हैं या छः ।

जिनवल्लभसूरि ने जिस कल्पसूत्र के पाठ पर अपने नये मत

की नींव डाली हैं। पर वल्लभ उस पाठ के आशय को ही नहीं समझा है। देखिये—

"पंच हत्थुत्तरे होत्था साइणा परिनिव्वुडे" अर्थात पंच हत्थुतरे और छट्ठा स्वाति नक्षत्र को देख कर छट्ठा गर्भापहार कल्याणक की प्ररूपना कर दी परन्तु श्रीआचारांगसूत्र तथा कल्पचूर्णि वगैरह शास्त्रों में नक्षत्र की गिनती करते हुए छ वस्तु बतलाई है न कि छः कल्याणक। यदि जिनवल्लभ जम्बुद्वीप प्रज्ञाप्तिसूत्र को देख लेता तो वहां ही समाधान हो जाता, कारण प्रस्तुत सूत्र में भी भगवान ऋषभदेव के लिये भी छः नक्षत्र कहा है।

"उसभेणं अरहा कोसलिए पंच उत्तरासाढ़े अभीच छट्ठे होत्था" जैसे महावीर के पंच हत्थुत्तरा और छट्ठा स्वाति नक्षत्र बतलाया है वैसे ही ऋषभदेव के पंच उत्तराषाढा और छट्ठा अभीच नक्षत्र बतलाया है। यदि महावीर के छः नक्षत्र होने से छः कल्याणक माना जाय तो ऋषभदेव के छः नक्षत्र बतलाये हैं वहाँ भी छः कल्याणक मानना चाहिये। यदि ऋषभदेव के राज्याभिषेक को कल्याणक नहीं माना जाय तो महावीर के भी गर्भापहार को कल्याणक नहीं मानना चाहिये ? पर यह तो सरासर अन्याय है कि ऋषभदेव के छः नक्षत्र कहने पर भी राज्याभिषेक को छोड़ कर पांच कल्याणक मानना और महावीर के गर्भापहार जो नीच गौत्र के उदय से हुआ है जिसको कल्याणक मानना। लीजिये स्वयं शास्त्रकार इस विषय के लिये क्या कहते हैं—

ण खलु एयं भूयं, ण भव्वं, ण भविस्सं, जण्णं अरहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवावा, अंतकुलेसु वा, पंतकुलेसु वा, तुच्छकुलेसु वा, दरिद्दकुलेसु वा, किविणकुलेसु वा, भिक्खागकुलेसु वा, माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा ॥१७॥ एवं खलु अरिहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, उग्गकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, राइण्णकुलेसु वा, इक्खागकुलेसु वा, खत्तिअकुलेसु वा, हरिवंस कुलेसु वा, अण्णयरेसु वा, तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा ॥ १८ ॥ अत्थि पुण एसेवि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं उस्सप्पिणि ओसप्पिणीहिं वइक्कंताहिं समुप्पज्जइ"

अर्थ—निश्चय कर के ऐसा न हुआ न होता और न होगा जो कि तीर्थंकर चक्रवर्ती वासुदेव बलदेव अंतकुल, प्रांतकुल, तुच्छ कुल, दरिद्रकुल, कृपणकुल, भिक्षुकुल ब्राह्मणकुल में आया आवे और आवेगा परन्तु निश्चय कर के अरिहन्त चक्रवर्ती बलदेव और वासदेव उग्रकुल भोगकुल राजनकुल, इक्ष्वाकुकुल क्षत्रिय कुल हरिवस कुल इनके अलावा और भी विशुद्ध जाति कुल में आया आवे और आवेंगे परन्तु यह तो एक आश्चर्यभूत अनन्तकाल से ऐसी बात होती है।

जबकि ब्राह्मणादिक कुल में तीर्थंकरों का आना अनन्तकाल से आश्चर्य बतलाया है तो उसको कल्याणक कैसे माना जाय।

आगे भगवान महावीर के लिये स्वयं शास्त्रकार फरमाते हैं कि:—

णामगुत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिण्णस्स उदएणं ।

अर्थात नामगोत्र कर्म को क्षीण न करने से, न वेदने से, न निर्ज्जरा करने से, उदय में आया है अब यह बतलाते हैं कि महावीर ने किस भव में नीच गोत्र उपार्जन किया था ।

मरीचिरपि तच्छ्रुत्वा हर्षोद्रेकात्रिपदीं आस्फोटय नृत्यन्निदं अवोचत् । यतः—"प्रथमो वासुदेवोऽहं, मूकायाँ चक्रवर्त्यहं । चरमस्तीर्थराजोऽहं, ममाहो ! उत्तमं कुलम् ॥ १ ॥ आद्योऽहं वासुदेवानां, पिता मे चक्रवर्त्तिनाम् । पितामहो जिनेंद्राणां ममाहो ! उत्तमं कुलम् ॥ २ ॥ इत्थं च मदकरणेन नीचैर्गोत्रं बद्धवान् ।

मरीची ने मद कर के नीच गोत्र उपार्जन किया था । वह उदय में आया । जिस नीच गौत्र उदय को कल्याणक मानना कितनी अनभिज्ञता की बात है । पर जिस जीव के मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का प्रबलोदय हुआ हो उसको कौन समझा सकता है ? यह तो हुई शास्त्र की बात अब पूर्वाचार्यो के कथन को देखिये।

खुद वल्लभ ने कहीं पर ऐसा नहीं लिखा है कि मैं अभयदेवसूरि का पट्टधर हूँ । पर पिछले लोग उसको अभयदेवसूरि के पट्टधर होने की मिथ्या कल्पना कर डाली है पर देखिये अभयदेवसूरि ने आचार्य हरिभद्रसूरि कृत पंचासक पर टीका रची है उसमें महावीर के

पाँच कल्याणक स्पष्टतया लिखे हैं, अतः यहाँ पर हरिभद्रसूरिकृत मूल पंचासक तथा उसकी टीका ज्यों की त्यों लिख देता हूँ।

तेसुअ दिणेसु धण्णा, देविंदाई करिंति भत्तिणया।
जिणजत्तादि विहाणा, कल्लाणं अपणो चेव ॥ ३ ॥
इअ ते दिणा पसत्था, ता सेसेहिंपि तेसु कायव्वा।
जिण जत्तादि सहरि संते अ, इम वद्धीमाणस्स ॥ ४ ॥
आसाढ़ सुद्धि छट्टी, चित्ते तह सुद्धि तेरसी चैव।
मग्गसिर कन्हा दसमी, वसाहि सुद्ध दसमी य ॥ ५ ॥
कतिय कन्हा चरिमा, गब्भाइ दिणा जहक्कमं एते।
हत्थुत्तरजोएणं चउरो, तह साइणा चरमो ॥ ६ ॥
अहिगय तित्थविहिया, भगवन्ति निदंसिआ इमे तस्स।
से साणवि एवं चिअ, निअ निअ तित्थेसुविण्णो आ ॥७॥

"श्री हरिभद्रसूरिकृत यात्रा पंचासक ग्रन्थ प० प० पृ० ३२८

उपरोक्त लेख में आचार्य हरिभद्रसूरि ने भगवान महावीर के कल्याणकों के लिए अलग २ तिथियाँ लिखी हैं जैसे—

१—आसाढ़ शुक्ल ६ को महावीर का चवन कल्याणक
२—चैत्र शुक्ल १३ को ,, जन्म ,,
३—मार्गशीर्ष कृष्ण १० को ,, दीक्षा कल्याणक
४—वैशाख शुक्ल १० को ,, केवल ज्ञान ,,
५—कार्तिक कृष्ण १४ को ,, निर्वाण ,,

अब आगे चल कर आप देखिये इसी पंचासक ग्रंथ पर अभयदेवसूरि ने टीका रची है जिसमें आप क्या लिखते हैं।

वर्द्धमानस्य—महावीर नजिस्य भवन्तीगाथार्थ आसाढ़ गाहा—आषाढ़शुद्धिषष्टी—आसाढ़मासशुक्लपक्षेषष्ठीतिस्थिरर्क दिनं १ एवं चैत्रमासेतिथेति समुच्चये शुद्धत्रयोदशेवेति द्वितीयं २ चैवेत्यवधारणे तथा मार्गशीर्ष कृष्णदशमीति तृतीय ३ वैशाख शुक्ल दशमीति चतुर्थ ४ च शब्द समुच्चयार्थ कार्तिककृष्णेचरमापंचदशीति पंचमं ५ एतानि किमित्यह—गर्भादिदिनानि ( १ ) गर्भ ( २ ) जन्म ( ३ ) निष्क्रमण ( ४ ) ज्ञान ( ५ ) निर्वाण दिवसा यथाक्रमं क्रमेणैवा ।

अभयदेवसूरि कृत पंचासक टीका ( प्र० प० पृ० ३३० )

इस टीका में भी भगवानमहावीर के पांचकल्याणक की पांच तिथियां अलग अलग लिखी हैं जैसे

१—आषाढ़ शुक्ला ६ को महावीर का चवन कल्याणक
२—चैत्र शुक्ला १३ को „ जन्म „
३—मार्गशीर्ष कृष्णा १० को „ दीक्षा „
४—वैशाख शुक्ला १० को „ केवल „
५—कार्तिक कृष्णा १५ को „ निर्वाण „

आचार्य हरिभद्रसूरि और अभयदेवसूरि जैसे धुरंधर आचार्यों के उपरोक्त लेखों से पाठक अच्छी तरह से समझ गये होंगे कि उन्होंने भगवानमहावीर के पांच कल्याणक माने हैं पर जिनवल्लभ के मिथ्यात्व मोहनीय का प्रबलोदय था कि उसने तीर्थङ्कर गणधर और पूर्वाचार्य के वचनों को उत्थाप कर छट्ठा गर्भापहारकल्याणक की उत्सूत्र प्ररूपना कर स्वयं और दूसरे

भद्रिकों को दीर्घ संसार के पात्र बना दिये और उनके अनुयायी आज पर्यन्त इस उत्सूत्र प्ररूपना का पक्ष कर अपने संसार की वृद्धि कर रहे हैं।

वल्लभ की उत्सूत्र प्ररूपना से जैनसमाज में बड़ा भारी उत्पात मच गया और क्या सुविहित समाज और क्या चैत्यवासी समाज ने उत्सूत्र प्ररूपक जिनवल्लभ को संघ बाहर कर दिया। देखिये:—

"असंविग्न समुदायेन संविग्न समुदायः सँघ बहिष्कृतः

प्रवचन परीक्षा पृष्ट २४२

इस पर भी वल्लभ ने अपने हठ कदाग्रह को नहीं छोड़ा पर कहा जाता है कि

'हारिया जुवारी दुणा खेले' जिनवल्लभ ने इस गर्भापहार कल्याणक के अलावा भी जिनवचनों में अनेक क्रियाओं की स्थाप उत्थाप करके अपना 'विधिमार्ग' नामका एक नया मत स्थापन कर जैनसमाज में फूट कुसम्प के ऐसे बीज बो दिये कि जिसके फल जैनसमाज आजपर्यन्त चख ही रहा है।

पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि यदि वल्लभ उत्सूत्र प्ररूपक नहीं होता और अभयदेवसूरि का पट्टधर होता तो उसको अभयदेवसूरि के समुदाय से अलग मत निकालने की जरूरत ही क्या थी; अतः जिनवल्लभ उत्सूत्र प्ररूपक था और उसने अभयदेवसूरि के समुदाय से अलग विधिमार्ग नामका नया मत निकाला था।

अब तो जिनवल्लभ के दिल में केवल एक बात ही पूर्ण तौर से खटकने लगी कि इतना होने पर भी मैं आचार्य नहीं बन सका। दो तीन वर्ष तक इस बात की कोशिश में भ्रमण किया परन्तु

किसी ने वल्लभ को आचार्य नहीं बनाया। कारण, एक तो वल्लभ उत्सूत्रवादी था, दूसरे श्रीसंघ ने उसको संघ बाहर भी कर दिया था, तीसरे नहीं था वल्लभ के कोई शिष्य और नहीं था कोई गुरु, चौथे वल्लभ के उत्सूत्र मत में अभी तक दो ही संघ थे, एक तो श्रमणसंघ जो एक वल्लभ, दूसरा श्रावक संघ ज चित्तौड़ के चन्द व्यक्ति जो वल्लभ को मानने वाले, इनके अलावा साध्वी या श्राविका कोई नहीं थी। कारण, उस समय का महिला समाज अपने धर्म पर इतना दृढ़ था कि कई पुरुष वल्लभ के अनुयायी बनने पर भी उनकी औरतें धर्म से विचलित नहीं हुई पर वल्लभ ने अपने अनुयायी श्रावकों के घरों में क्लेश कुसम्प डलवा कर कुछ औरतों को अपने पक्ष में बनाकर बड़ी मुश्किल से तीन संघ बनाये, पर वल्लभ की मौजूदगी में उसके पास किसी स्त्री पुरुष ने दीक्षा नहीं ली। अतः वल्लभ के दो संघ और बादमें तीन संघ ही रहे।

जिनवल्लभ को आचार्य पद की अभिलाषा तो पहिले से ही थी, फिर देवभद्र का संयोग मिल गया। पर यह समझ में नहीं आता है कि देवभद्राचार्य वल्लभ के धोखे में कैसे आगये कि उस ने वल्लभ को चित्तौड़ ले जा कर वि० सं० ११६७ में आचार्य बना दिया; वह भी अभयदेवसूरि का पट्टधर। जिस अभयदेवसूरि के स्वर्गवास को उस समय ३२ वर्ष हो गुजरे थे। यही कारण था कि उस समय की जनता वल्लभ को जारगर्भ के सदृश आचार्य कहा करती थी बात भी ठीक थी कि जिस पति के देहान्त के बाद ३२ वर्षों से पुत्र जन्म ले उसको जारगर्भ न कहा जाय तो और क्या कहा जाय ? यही हाल जिनवल्लभ का हुआ।

जैनसमाज की तकदीर ही अच्छी थी कि जिनवल्लभ आचार्य बनने के बाद केवल छः मास ही जीवित रहा। यदि वह अधिक जीवित रहता तो न जाने जैनसमाज के लिये क्या २ उजाला कर जाता।

किसी राजाने अपनी मौजूदगी एवं अपने हाथों से अपने योग्य पुत्र को राजतिलक कर सब अधिकार सुप्रत कर दिया, पर कोई रिशवतखोरा एक चलते फिरते इज्जतहीन को लाकर राजा बना दे तो क्या जनता उसको राजा मान लेगी? हर्गिज नहीं। यही हाल जिनवल्लभ का हुआ, अतः वल्लभ को अभयदेवसूरि के पट्टधर बना देने से अभयदेवसूरि का पट्टधर नहीं कहा जा सकता है। कारण, अभयदेवसूरि तो शुद्ध चन्द्रकुल की परम्परा में हैं और अभयदेवसूरि की सन्तान परम्परा भी अभयदेवसूरि के नाम से चलती आई है। देखिये—

जिनेश्वरसूरि
|
जिनचन्द्रसूरि
|
अभयदेवसूरि
|
वर्द्धमानसूरि
|
पद्मप्रभसूरि
+
+
+
|
धर्मघोषसूरि

कुर्च्चपुरा गच्छीय चैत्यवासी
विधिमार्ग स्थापक
जिनवल्लभसूरि

| जिनदत्तसूरि (खरतर शाखा) | जिनशेखरसूरी (रुद्रपाली शाखा |
|---|---|
| जिनचन्द्र | पद्मचन्द्र |
| जिनपति | विमलचन्द्र |
| जिनेश्वर † | अभयदेव ‡ |

इस खुर्शी नामा से पाठक समझ सकते हैं कि अभयदेवसूरि के साथ वल्लभ का क्या सम्बन्ध है ? कुछ नहीं। खरतर मत की मर्यादा का संयोजक जैसे जिनपति एवं जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) था वैसे ही रुद्रपाली मर्यादा बाँधने वाला ‡ अभयदेवसूरि था।

यह तो हुई जिनवल्लभ सूरि के उत्सूत्र से 'विधिमार्ग' मतोत्पत्ति की बात। आगे चल कर इस विधिमार्ग का नाम खरतर किस प्रकार हुआ वह बतलाया जायगा जिसको पाठक खूब ध्यान लगा कर पढ़ें।

देवभद्राचार्य ने संघ से खिलाफ हो श्री संघ से बहिष्कृत हुए वल्लभ को आचार्य बना कर श्री संघ में एक फूट के वृक्ष का बीज बो दिया था और उसको फला फूला देखने की बड़ी २ आशाओं के पुल बांध रहा था पर भाग्यवशात् छः मास में ही वल्लभसूरी का देहान्त हो जाने से देवभद्र की सबकी सब आशायें मिट्टी में मिल गई। यदि देवभद्र इतने से ही संतोष कर लेता तो वह फूट रूपी वृक्ष वहीं नष्ट हो जाता, पर देवभद्र भी एक हठीला पुरुष था कि अपने हाथों से लगाया हुआ वृक्ष अपनी मौजूदगी में ही नष्ट कैसे हो जाय। देवभद्र ने वल्लभ के पट्टधर बनाने के लिये बहुत कोशिश की परन्तु ऐसे काले कर्म किस के थे कि उन उत्सूत्र प्ररूपक एवं श्रीसंघ से बहिष्कृत जिनवल्लभ का पट्टधर बने ? दूसरे जिनवल्लभ के न था साधु, न थी साध्वी फिर किस जायदाद पर उसका पट्टधर बने।

कुदरत का यह एक नियम है कि जैसे को तैसा मिल ही जाता है। इस नियमानुसार देवभद्राचार्य को एक सोमचन्द्र नामक मुनि मिल गया। सोमचन्द्र ने वि० सं० ११४१ में धर्मदेवो-

पाध्याय के पास दीक्षा ली थी आपकी प्रकृति उग्र एवं खरतर थी। आप पद्वी के बड़े ही पिपासु थे पर पद्वी के योग्य एक भी गुण आपने सम्पादित नहीं किया था। यही कारण है कि करीबन २८ वर्षों से कोशिश करने पर भी आपको किसी ने एक छोटी सी पदवी भी नहीं दी। इससे पाठक समझ सकते हैं कि साधु सोमचन्द्र के अन्दर कितनी योग्यता थी? फिर भी सोमचन्द्र हताश न होकर पदवी के लिये कोशिश करता ही रहा। ठीक उस समय देवभद्र की भेंट सोमचन्द्र से हुई। आपस में वार्तालाप अर्थात वचनबन्धी हो गई। शायद यह वचनबन्धी जिनवल्लभ की षट् कल्याणकादि उत्सूत्र प्ररूपना को मान कर उसकी ही प्ररूपना करने की होगी। खैर, सोमचन्द्र ने देवभद्राचार्यके कहने को मंजूर कर लिया क्योंकि गरजवान् क्या नहीं करता है।

जिनवल्लभ का देहान्त होने के बाद २ वर्ष से अर्थात् वल्लभ का देहान्त वि० सं० ११६७ में हुआ तब वि० सं० ११६९ में देवभद्र ने सोमचंद्र को चित्तौड़ ले जाकर वल्लभ का पट्टधर बना दिया और उस सोमचन्द्र का नाम जिनदत्तसूरि रख दिया। इससे पाया जाता है कि इन उत्सूत्र वादियों के उस समय सिवाय चितौड़ के कोई स्थान ही नहीं होगा।

देवभद्र भी एक पक्षपात का बादशाह था कारण, यदि उसको वल्लभ का पटधर ही बनाना था तो वल्लभ के पास शेखर नाम का साधु रहता था और वह वल्लभ का संभोगी भी था तब उस संभोगी साधु को छोड़ विसंभोगी सोमचंद्र को वल्लभ का पट्टधर बनाया यह तो उसने जान बूझ कर उन दोनों को आपस

में लड़ाने का ही काम किया था। शायद इसका कारण यह हो कि देवभद्र और शेखर के आपस में कलह हो गया था और देवभद्र ने शेखर का गला घोट ❀ कर निकाल दिया था। अतः देवभद्र ने द्वेष के कारण संभोगी साधु शेखर को छोड़ कर विसंभोगी सोमचन्द्र को सूरि बनाया होगा।

मुनि शेखर भी देवभद्र एवं सोमचन्द्र से कम नहीं था। उसने भी अपनी अलग पार्टी बनानी शुरु कर दी और उसमें शेखर को सफलता भी मिलती गई। कारण, जिनदत्त की खरतर प्रकृति के कारण साधु उनसे राजी नहीं पर नाराज ही रहते थे। बस मुनि शेखर को सफलता मिलने का यही विशेष कारण था। समय पाकर मुनि शेखर भी सूरि बन गया और जिनवल्लभ के 'विधि मार्ग' के दो टुकड़े हो गये। एक का आचार्य जिनदत्त तब दूसरे का आचार्य जिन शेखर।

प्रश्न—जिनदत्त सूरि तो सं० ११६९ में आचार्य हुये तब जिनशेखरसूरि आचार्य कब हुये ?

उत्तर—खरतरगच्छ की पट्टावली पृष्ठ ११ पर लिखा है कि:—

संवत् १२०५ रुद्रपल्ल्यां छद्मना सूरिपदं गृहीतं जिनशेखरेण ततो रूद्रलिया गण जातः" ।

अर्थात् १२०५ में जिनशेखर आचार्य हुये।

प्रश्न—जब सम्वत् १२०५ में जिनशेखर आचार्य हुआ तब बाबू पूर्णचन्द्रजी सम्पादित शिलालेख खण्ड तीसरा पृष्ठ १२ पर एक

❀ "अपर दिने जिनशेखरेण साधु विषये किंचित्कलहादिकम युक्तं कृतं, ततो देवभद्राचार्येण गले गृहीत्वा निष्काशित इत्यादि।"

'प्रवचन परीक्षा पृष्ट" २५१

शिलालेख में वि० सं० ११४७ में खरतरगच्छीय जिनशेखरसूरि ने मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाइ लिखा है।

उत्तर—यह लेख जाली है कारण ११४७ में न तो जिन-शेखर सूरि बना था न खरतर शब्द का जन्म ही हुआ था न जिनशेखर सूरि खरतर ही था और न इस शिलालेख की मूर्ति ही जैसलमेर में है। इसकी आलोचना प्रथम भाग में कर दी गई है। खरतरों ने खरतर शब्द की प्राचीनता साबित करनेको यह जाली लेख छपाया है, परन्तु इतनी अक्ल भी तो खरतरों में कहाँ है कि कल्पित लेख लिखने के पूर्व उसका समय तो मिला लेते, जैसे जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ और खरतर विरुद का समय खरतरों ने वि० सं० १०२४ का लिख मारा है देखो 'खरतरमतोत्पत्ति दूसरा भाग'। तथा वर्द्धमानसूरि को १०८८ में आबू के मंदिर की प्रतिष्ठा कराना लिख मारा है इसी प्रकार आधुनिक खरतरों ने११४७ का जाली लेख छपा दिया है। इस प्रकार कल्पित लेख लिखना तो खर-तरों ने जन्मसिद्ध हक्क एवं अपना सिद्धान्त ही बना लिया है और कल्पित मत में कल्पित लेख लिखा जाय तो इसमें आश्चर्य करने की बात ही क्या है। खैर—जिनदत्तसूरि ने आचार्य बनने के बाद क्या किया जिनको भी मैं यहाँ दर्ज कर देता हूँ।

जिनदत्तसूरि ने इस नूतन मत की वृद्धि के लिए एक मिथ्यात्वी चामुण्डा देवी की आराधना की। जिसके मठ में पूर्व जिनवल्लभ भी ठहरा था। पर देवी देवता भी तो इतने भोले नहीं होते हैं कि ऐसे शासन भंजकों का साथ दें अर्थात न सफलता मिली थी जिनवल्लभ को और न मिली जिनदत्त को। फिर भी जिनदत्त भद्रिक लोगों को कहता था कि देवी चामुण्डा मेरे बस

हो गई। अतः कई लोग जिनदत्त के मत को चामुण्डिक मत कहने लग गये। महोपाध्यायधर्मसागरजीके मतानुसार इस घटना का समय वि० सं० १२०१ का कहा जाता है। जिनदत्त ने जिन-वल्लभ के त्रिविधि संघ को बढ़ा कर चतुर्विध संघ बना दिया।

'पाखण्डे पूज्यते लोका'। संसार में तत्व-ज्ञान को जानने वाले लोग बहुत थोड़े होते हैं। जिनदत्तसूरि के जीवन से यह भी पता मिलता है कि वह किसी को यंत्र, किसी को मंत्र, किसी को तंत्र और किसी को रोग निवारणार्थ [1]औषधियां वगैरह बत-लाया करता था। अतः जिनवल्लभ की बजाय जिनदत्त० के भक्तों की संख्या बढ़ गई हो तो यह असम्भव भी नहीं है, क्योंकि जनता हमेशा भौतिक सुखों को चाहने वाली होती है।

वि० सं० १२०४ में जिनदत्तसूरि पाटण जाता है और एक दिन वह मन्दिर में गया। वहां पर कुछ रक्त के छींटे देखे। इस निमित्त कारण से उसके मिथ्यात्व कर्म का प्रबल्य उदय हो आया और उसने यह मिथ्या प्ररूपना कर डाली कि स्त्रियों को जिनप्रतिमा की पूजा करना नहीं कल्पता है। अतः कोई भी स्त्री जिन प्रतिमा की पूजा न करे इत्यादि।

उस समय का पाटण जैनों का एक केन्द्र था केवल १८०० घर तो करोड़पतियों के ही थे। परमार्हत महाराज कुमारपाल वहां का राजा था। कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य एवं राजगुरु कंक्कसूरि जैसे जिनशासन के स्तम्भ आचार्य वहां विद्यमान थे। इस हालत में जिनदत्त की इस प्रकार उत्सूत्र प्ररूपना को पट्टण का श्रीसंघ कैसे सहन कर सकता था। जब जिनदत्त की उत्सूत्र

---

१—देखो—खरतरों की महाजन वंश मुक्तावली नामक किताब

रूपना के समाचार उन शासन स्तंभ धुरंधर आचार्यों के कानों तक पहुँचे तो उनको बड़ा ही दुःख हुआ। कारण, जिनवल्लभ की वीर गर्भापहार रूपी उत्सूत्र प्ररूपना तो अभी शासन को कांटा खीला की भांति खटक ही रही थी, फिर जिनदत्त० ने इस प्रकार उत्सूत्र प्ररूपना क्यों की है ? जैनागमों में चेलना, सिवा प्रभावती मृगावती, जयन्ति, सुलसा और द्रौपदी वगैरह अनेक महिलाओं ने परमेश्वर की द्रव्य भाव से पूजा की, जिसके उल्लेख आगमों में स्पष्ट मिलते हैं। अतः इसके लिए सभा करके जिनदत्तसूरि को समझाना चाहिये। यदि वह समझ जांय तो ठीक, नहीं तो जिनदत्त का संघ से बहिष्कार कर देना चाहिये। जैसे कि जिनवल्लभ का श्रीसंघ ने बहिष्कार कर दिया था, इत्यादि। इस बात की नगर में खूब गरमागरम चर्चा चल पड़ी।

जिनदत्तसूरि एक हटकदाग्रही व्यक्ति था। उसने आन्दोलन की बात सुन कर सोचा कि एक तरफ तो राजा कुमारपालादि सकल श्राद्ध संघ तथा दूसरी ओर हेमचन्द्रसूरि आदि श्रमण संघ है। यहां मेरी कुछ भी चलने की नहीं है, अतः रात्रि में एक शीघ्रगामी ऊंट मंगवा कर उस पर सवार हो रात्रि में ही पलायन र गया जैसे पुलिस के भय से चोर पलायन कर जाते हैं। जिनदत्त पाटण से ऊंट पर सवारी कर थोड़े ही समय में जावलीपुर पहुँच गया। तब जाकर उसने थोड़ा निर्भयता का श्वास लिया। जैसे चोर पल्ली में जाकर निर्भयता का श्वास लेता है।

सुबह श्रीसंघ ने खबर मंगाई तो मालूम हुआ कि जिनदत्त तो रात्रि में ही पलायन कर गया है। अतः श्रीसंघ ने यह निश्चय किया कि जहां जिनदत्त० गया हो वहां के श्रीसंघ को लिख दिया

जाय कि यदि जिनदत्त० आपके यहां स्त्री जिनपूजा निषेध की मिथ्या[1] प्ररूपना करे तो आप उसको संघ बाहर कर दें। यहां का संघ आपके सम्मत है इत्यादि।

जब जिनदत्त० जावलीपुर में पहुँचा तो वहां के लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिनदत्तसूरि को तो पाटण में देखा था। आज यहां कैसे आ गये? इस शंका के निवारणार्थ श्रीसंघ के अग्रेश्वरों ने जाकर जिनदत्त से पूछा तो उत्तर दिया कि मैं औष्ट्री विद्या से आया हूँ। पहिले तो लोगों ने समझा कि औष्ट्री कोई विद्या होगी, पर बाद में पाप का घड़ा फूट गया और लोगों को मालूम हो गया कि जिनदत्त० ऊंट[2] पर सवार होकर आया है। उस समय तार या डाक का साधन नहीं था कि एक प्रान्त के समाचार दूसरे प्रांत में जल्दी ही पहुँच जाय, फिर भी लोगों ने पता लगा ही लिया।

जिनदत्तसूरि कई दिन तो चुपचाप रहा, पर बाद तो आपने अपनी प्रकृति का परिचय देना शुरू किया अर्थात स्त्रियों को जिनपूजा निषेध करना शुरू किया। पर जावलीपुर का श्रीसंघ इतना भोला नहीं था कि जिनदत्त की उत्सूत्र प्ररूपना को मान कर अपना अहित करने को तैयार हो। जब संघ अग्रेसरों ने जिनदत्त से पूछा कि किसी शास्त्र में स्त्रियों को जिनपूजा करना निषेध किया है? उत्तर में जिनदत्त ने अपनी खर प्रकृति के परिचय के अलावा कुछ भी प्रमाण नहीं बतलाया। अतः लोग जिन-

---

१ "जिणपूआ विग्घ कारो हिंसाई परायणो जयद विग्घो।
जिनपूआ विघ्नकारो यज्ञपात की प्रवचन उपधानि॥"

२ उष्ट्र वाहनारूढा पत्तनाज्जवलीपुरं प्राप्तः प्र० प० पृष्ट २६८

दत्त की खर प्रकृति के कारण खरतर कहने लगे। बस, वहां के श्रीसंघ ने जिनदत्त० को कहा अरे ये तो खरतर तो खरतर ही निकला। इस प्रकार कह कर संघ बाहर कर दिया। जिनदत्त० के मत का नाम चामुण्ड तो पहिले ही था। ऊंट पर सवार होने से लोगों ने इस मत का नाम औष्ट्रीक मत रख दिया और तीसरा खरतर नाम भी इस जिनदत्त० के कपाल में ही लिखा हुआ था कि लोगों ने जिनदत्त के मत को खरतर मत कहना शुरू कर दिया। यह इनकी खरतर प्रकृति का ही द्योतक था। जिनदत्तसूरि जैसे चामुंड और औष्ट्रीक नाम से खीजता एवं क्रोध करता था, वैसे ही खरतर नाम से भी सख्त नाराज होता था। कारण, यह नाम भी अपमानसूचक ही था। इस प्रकार इस मत के क्रमशः तीन नामों की सृष्टि पैदा हुई थी जिसमें खरतर नाम आज भी जीवित है।

जैन धर्म में मूर्तिपूजा का निषेध सबसे पहले जिनदत्तसूरि ने ही किया है, बाद लौंकाशाह वगैरह ने तो उस जिनदत्तसूरि का अनुकरण ही किया है। हाँ जिनदत्तसूरि ने केवल स्त्रियों को जिनपूजा करने का निषेध किया तब लौंकाशाह ने स्त्री और पुरुष दोनों को जिन पूजा का निषेध कर दिया पर इनका मूल कारण तो जिनदत्तसूरि ही थे।

यदि जिनदत्तसूरि की मान्यता थी कि तीर्थंकर पुरुष थे उनको स्त्रियां छू नहीं सकती हैं पर वर्तमान चौबीस तीर्थंकरोंमें उन्नीसवाँ मल्लिनाथ तीर्थंकर तो स्त्री थे। खरतरियों के लिये मल्लिनाथ की मूर्ति पूजना रख देते तो बिचारी खरतरियां जिनपूजा से तो वंचित नहीं रहतीं, पर जिनदत्तसूरि में उस समय इतनी अकल ही कहाँ

थी। उसने तो मिथ्यात्व के प्रबलोदय से स्त्रियों को जिनपूजा करना निषेध कर ही दिया। फिर भी जैन शासन की तकदीर ही अच्छी थी कि जिनदत्तसूरि ने एक स्त्री को ही आशातना करती देख स्त्रियों को ही जिनपूजा करना निषेध किया। यदि इसी प्रकार किसी पुरुष को आशातना करता देखता तो पुरुष को भी पूजा करना निषेध कर देता।

आगे चल कर जिनदत्त सूरि ने तो यहां तक आग्रह कर लिया कि स्त्रियां जिन तीर्थङ्कर को छू नहीं सकती थीं तो वे उन की प्रतिमाओं को कैसे छू सकती हैं। इस बात का उसने केवल जबानी जमाखर्च ही नहीं रखा था पर अपने ग्रन्थों में लेख भी लिख दिया। देखो जिनदत्तसूरि कृत कुलक जिस पर जिनकुशलसूरि ने विस्तार से टीका रची है जिसमें लिखा है कि :—

संभव अकालेऽविन्दु कुसुमं महिलाणे तेण देवाणां।
पूआई अहिगारो, न ओघओ सुत निदिट्ठो ॥ १ ॥
न छिविंति तहा देहं ओसणे, भावजिणवरिंदाणं।
तह तप्पडिमंपि सया पूअंति न सड्ढ नारिओ ॥ २ ॥

प्र० प० पृ० ३७१

यही कारण है कि खरतर मत में आज भी स्त्रियां जिन पूजा से वंचित रहती हैं। इतना ही क्यों पर जैसलमेरादि कई नगरों के मन्दिर खरतरों के अधिकार में हैं, वहाँ अन्य गच्छवालों की औरतों को खरतर जिन पूजा नहीं करने देते हैं, इस अन्तराय का मूल कारण तो जिनदत्तसूरि ही हैं।

इसी प्रकार महोपाध्यायजी धर्मसागरजी ने अपने प्रवचन परीक्षा नामक ग्रन्थ के पृष्ठ२६७ पर लिखा है कि :—

अह अण्णया कयाई, खहिरं दट्ठुण जिणहरे रुट्ठो ।
इत्थीण पच्छितं देइ, जिणपूअ पडिसेहं ॥ ३५ ॥
संघुति भय पलाणो, पट्ठणओ उट्ठवाहणारूढो ।
पत्तो जावलीपुरं, जण कहणे भणाइ विज्ञाए ॥ ३६ ॥

इस प्रकार जिनवल्लभसूरि के 'विधिमार्ग' मत का नाम जिनदत्तसूरि की खर प्रकृति के कारण खरतर हुआ है । फिर भी उस समय यह खरतर नाम अपमानसूचक होने से किसी ने भी नहीं अपनाया था । हाँ बाद दिन निकल जाने से जिनकुशलसूरि के समय उस अपमानसूचक खरतर शब्द को गच्छ के रूप में परिणित कर दिया । बस उस दिन से यह खर-तर शब्द गच्छ के साथ चिपक गया जैसे लोहे के साथ कीटा चिपक जाता है ।

प्रश्न—यदि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की खर प्रकृति से हुई होती और यह शब्द अपमान के रूप में होता तथा इस खरतर शब्द से जिनदत्तसूरि सख्त नाराज होता तो जिनदत्तसूरि की कराई हुई प्रतिष्ठावाली मूर्तियों के शिलालेखों में खुद जिनदत्तसूरि अपने को 'खरतरगच्छ सुविहित गणाधीश' क्यों लिखते ? जैसे जैतारन ग्राम में कई मूर्तियां जिनदत्तसूरि की प्रतिष्टा करवाई हुई आज भी विद्यमान हैं और उन मूर्तियों पर शिलालेख भी खुदे हुये मौजूद हैं । देखिये नमूने के तौर पर कतिपय शिलालेख ।

"सं० ११७१ माघ शुक्ल ५ गुरौ सं० हेमराजभार्यहेमादे पु० सा० रूपचन्द रामचन्द्र श्रीपार्श्वनाथ विंव करापितं अ० खरतर गच्छे सुविहित गणाधीश श्री जिनदत्तसूरिभिः"

“सं० ११७४ वैशाख शुक्ला ३ स० न……भार्य हेमादें पु०……चन्द्रप्रभविव……प्र० खरतरगच्छे सुविहित गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः

“सं० ११८१ माघ शुक्ल ५ गुरौ प्राग्वट ज्ञातिय सं० दीपचन्द्र भार्य दीपादें पु० अबीरचन्द्र अमीचन्द्र श्री शान्ति नाथ बिंव करापितं प्र० खरतर गच्छे सुविहित गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः

“सं० ११६७ जेठ वदी ५ गुरौ स० रेनुलाल भार्य रत्नादें पु० सा० कुनणमल श्रीचन्द्रप्रभ बिंव करापित प्र० सुविहित खरतर गच्छेगणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः

इनके अलावा जैसलमेर के शिलालेखों में सं० ११४७ के शिलालेख में खरतर गच्छे जिनशेखरसूरि का नाम आता है तथा और भी किसी स्थान पर ऐसी मूर्तियां होगी। अतः इन शिलालेखों से पाया जाता है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्त सूरि से नहीं पर आपके पूर्ववर्ती आचार्य्य जिनेश्वरसूरि से ही हुई होगी।

उत्तर—११४७ की मूर्ति एवं शिलालेख के लिये तो मैंने प्रथम भाग में समालोचना कर दी थी कि न तो जैसलमेर में ११४७ वाली मूर्ति है और न ११४७ में जिनशेखरसूरि का अस्तित्व ही था। कारण, खरतरगच्छ की पट्टावली में जिनशेखरसूरि का समय वि० सं० १२०५ का लिखा है। अतः यह

लेख खरतरों ने खरतर शब्द को प्रचीन बनाने के लिये जाली छपाया है ।

इसी प्रकार जैतारण की मूर्तियों के लेख भी कल्पित हैं । चोर चोरी करता है पर उसमें कहीं न कहीं चोरी पकड़ी जाने के लिये त्रुटि रह ही जाती है । उपरोक्त शिलालेखों में चतुर्थ शिलालेख ११६७ का है जब जिनदत्तसूरि को सूरि पद वि० सं० ११६९ में हुआ था । उसके पूर्व जिनदत्त का नाम सोमचन्द्र था । जब जिनदत्त नामका जन्मही ११६९ में हुआतो ११६७ के शिलालेख में जिनदत्तका नाम आ ही कैसे सकता था । क्योंकि जन्म के पूर्व नाम हो ही नहीं सकता है । अतः पूर्वोक्त सब लेख जाली एवं कल्पित हैं । इन लेखों की लिपि की ओर दृष्टिपात करने से साफ साफ मालूम होता है कि यह लिपि बारहवीं शताब्दी की नहीं पर सत्रहवीं शताब्दी की है कि जिस समय महोपाध्यायजी धर्मसागर जी और जिनचन्द्रसूरि की आपस में खरतर शब्द की उत्पत्ति के विषय में खूब द्वन्द्वता चल रही थी । उस समय जिनचन्द्रसूरि ने भविष्य में खरतर शब्द को प्राचीन सिद्ध करने के लिये इस प्रकार नीच कर्म किया है । पर उस समय जिनचन्द्र को यह विश्वास नहीं था कि आगे चल कर एक जमाना ऐसा आवेगा कि लिपि शास्त्र के जानकार सौ सौ वर्ष की लिपियों को पहिचान कर जाली लेखों के पर्दे चीर डालेंगे ।

भला जिनदत्तसूरि ने जैसे मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई है वैसे कोई ग्रन्थभी निर्माण किया है । दो पंक्तियों के शिलालेख में तो उन्होंने अपनेको सुविहित खरतरगच्छे गणाधीश होना लिख दिया, तब उनके ग्रन्थों की लम्बी चौड़ी प्रशस्तियों में खरतर शब्दकी गन्ध तक

भी नहीं। इतना ही क्यों पर उनके पीछे जिनचन्द्र और जिनपति के ग्रन्थों में भी खरतर शब्द की बू तक न मिले। यह सत्रहवीं शताब्दि के जिनचन्द्र की काली करतूतों को स्पष्ट सिद्ध जाहिर कर रही हैं। अतः उसके खुदाये हुए जाली शिलालेखोंसे खरतर शब्द प्राचीन नहीं पर अर्वाचीन ही सिद्ध होता है। क्योंकि जो व्यक्ति झूंठा होता है वही ऐसा नीच कर्म करता है।

मेरी लिखी खरतरमतोत्पत्ति भाग १-२ के प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि खरतर शब्द गच्छ के रूप में विक्रम की चौदहवीं शताब्दि से लिखा जाना शुरु हुआ है। इसके पूर्व यह अपमान के रूप में ही समझा जाता था। क्योंकि जिनदत्तसूरि की प्रकृति से पैदा हुआ बारहवीं शताब्दि का खरतर शब्द चौदहवी शताब्दि तक गुप्त रूप में रहे, इसका कारण यही हो सकता है कि यह अपमानसूचक शब्द था कि किसीने इसको नहीं अपनाया था,

झूंठ बोलना झूंठ लिखना तो इस खरतरमत का शुरू से मूल सिद्धान्त ही है। जब ये खास भगवान् और पूर्वाचार्यों के वचनों को अन्यथा करने का भी डर नहीं रखते हैं तो झूंठ लेख लिखने का तो भय ही क्यों रक्खें। खरतरों ने जिनेश्वरसूरि को ही क्यों पर वर्द्धमानसूरि, उद्योतनसूरि और गणधरसौधर्म एवं गौतम को भी खरतर लिख दिया। यह भी खरतरों के ही लिखे हुए लेख हैं। अतः जैतारनादिकी मूर्तियों पर खरतरोंके खुदाये हुए जाली लेखों पर कोई भी व्यक्ति विश्वास कर धोखे में न आवे। क्यों कि वे लेख सत्रहवीं शताब्दि में जिनचन्द्र ने खुदाये हैं और उन शिलालेखों की लिपि भी सत्रहवीं शताब्दि की लिपि से मिलती जुलती है।

यह तो एक नमूना मात्र ही बतलाया है पर इस प्रकार तो खरतरों ने कई अनर्थ किये हैं। प्रवचन परीक्षा नामक ग्रन्थ में उपाध्याय धर्मसागरजी महाराज लिखते हैं कि:—

"जेणं जिणदत्त मए, पुराण पाढणमण्णहा करणे।
परलोअ भयभीआ, अज्जवि दीसंति वेसहरा ॥ ४६ ॥

अर्थात् जिनदत्त के मत में पुराणे पाठों को चुराने एवं रद्दोबदल करने वाले आज भी कई वेषधारी विद्यमान हैं। यह बात उपाध्यायजी ने केवल इधर उधर की सुनी हुई बातों के आधार पर ही नहीं लिखी है, पर अपने नाडोल ( नारदपुरी ) के भंडार की पुराणी प्रतियों से जैसलमेर की प्रतियों का मिलान करके ही लिखी है। पर जब खास गणधर भगवान् के आगमों को भी अन्यथा प्ररूपने में खरतरों को भय एवं लज्जा नहीं है तो दूसरों का तो कहना ही क्या है? अतः खरतर मत चौरासी गच्छों में गच्छ नहीं पर उत्सूत्रवादी मतों में एक मत है जो उपरोक्त प्रमाणों से साबित हो चुका है।

प्रश्न—यदि आपके कथनानुसार विधिमार्ग एवं खरतरमत उत्सूत्र से ही पैदा हुआ है तो फिर इस मत की इस प्रकार वृद्धि होना और हजारों लोगो का इसको मानना और आज सात आठ सौ वर्षों से अविच्छिन्नरूप से चला आना कैसे माना जा सकता है?

उत्तर—इसके लिये पहिले तो आपको 'खरतरों की बातें' नाम की पुस्तक मंगवा कर पढ़ना चाहिये जो श्रीमान् केसरचन्दजी चोरड़िया की लिखी हुई है बस! आपका समाधान स्वयं हो जायगा। दूसरे मत चलना तथा उसकी वृद्धि होना या हजारों लोगों का मानना और सात आठ सौ वर्ष तक चला आना यह सब

बातें एकान्त सत्यता के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती हैं क्योंकि आप स्वयं सोच सकते हो कि आज दुनिया में सैकड़ों धर्म प्रचलित हैं जिसमें कई ऐसे भी धर्म हैं कि जिनको खरतर भाई भी मिथ्या धर्म मानते हैं वे सैकड़ों हजारों वर्षों से अविच्छिन्न रूप में चले आते हैं। उनकी वृद्धि एवं मानने के लिए लाखों करोड़ों आदमी उनको मानते भी हैं फिर भी सत्य की कसौटी पर कसने से वे मिथ्या धर्म ही साबित होते हैं। अतः केवल किसी मत की वृद्धि एवं उसको हजारों लाखों आदमियों के मानने मात्र से ही सत्यता नहीं कही जाती है। आप दूर क्यों जावें खास जैनों में ही देखिये एक दिगम्बर समुदाय है जिसको हमारे खरतर मत वाले जैन सिद्धान्त से खिलाफ समझते हैं उनको भी लाखों मनुष्य मानते हैं वैसे ही लौंकामत एवं ढूंढ़िया मत को भी समझ लीजिये कि उन्होंने बिना गुरु मत निकाला वह आज तक चल ही रहे हैं और करीब दो तीन लाख मनुष्य उनको पूज्यदृष्टि से भी देखते हैं। इसी माफिक खरतर मत को भी समझ लीजिये, फिर भी यह कहना पड़ता है कि खरतरों ने तो करोड़ों की जैन संख्या से थोड़े से अनभिज्ञों को भगवान महावीर के छः कल्याणक मनाकर तथा स्त्रियों को जिनपूजा छुड़ाकर अपने अनुयायी बनाये पर लौंका—ढूँढ़ियों ने तो लाखों जैनों से ही दो तीन लाख मनुष्यों को मूर्तिपूजा छुड़ाकर अपने अनुयायी बना लिये बतलाइये इसमें विशेषता खरतरों की है या ढूँढ़ियों की ? अतः आप समझ सकते हो कि मत चलने में तथा उसको बहुत मनुष्य मानने मात्र से ही सत्यता नहीं समझी जाती है। अतः मेरे पूर्व प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि जिनवल्लभ का 'विधिमार्ग' और जिनदत्त

के खरतरमत ने उत्सूत्र-भाषण से जन्म लिया है और कदाग्रह से ही यह आज पर्यन्त जीवित रहा है।

प्रश्न—कई लोग यह भी कहते हैं कि यदि जिनदत्तसूरि आदि आचार्य उत्सूत्र प्ररूपक होते तो ग्राम ग्राम उनकी छत्रियें पादुकाएं, मूर्तियें और दादाबाड़ियें क्यों बनतीं तथा तीर्थङ्करों के मन्दिरों में उनके पादुका क्यों होते ?

उत्तर—दादाजी ने अपने गुणों से पूजा नहीं पाई थी। उन्होंने अपने पर उत्सूत्र प्ररूपना के कलंक को छिपाने के लिये एक जाल रच कर ऐसा जघन्य काम किया था, वरना इनके पूर्व सैकड़ों हजारों आचार्य हुए थे, पर किसी ने अपने हाथों से अपनी मूर्तियें एवं पादुकायें पुजवाने की कोशिश नहीं की थी। देखिये जिनदत्तसूरि के थोड़े ही वर्षों बाद आंचलगच्छ में एक धर्मघोषसूरि नाम के आचार्य हुए, उन्होंने अपने शतपदी नामक ग्रन्थ में जिनदत्तसूरि के लिये लिखा है कि :—

१—श्राविक स्त्रियों ने पूजा नो निषेध कर्यो।

२—लवण (निमक) जल, अग्नि में नोखवु ठेराव्यो।

३—देरासर में जुवान वेश्या नहीं नचावी, किन्तु जे नानी के वृद्ध वेश्या होय ते नचाववी एवी देशना करी।

४—गोत्रदेवी तथा क्षेत्रपालादिकनी पूजा थी सम्यकत्व भागे नहिं एम ठेराव्युं।

५—अमेज युगप्रधान छीए एम मनावा मांड्युं।

६—वली एवी देशना करवा मांडी के एक साधारण खातानु बाजोठ (पेटी) राखावुं, तेने आचार्य नो हुकम लइ उघाड़वुं।

तेमां ना पैसा मांथी आचार्यादिकना अग्नि-संस्कार स्थाने स्तूपादिक करावयो तथा त्यां यात्रा अने उजणीओ करवी।

७—आचार्यों नी मूर्तियो करावबी।

८—चक्रेश्वरीनी स्तुति मां जिनदत्तसूरिए कह्युं छे के विधि-मार्गना शत्रुओ ना गला कापी नाखनार चक्रेश्वरी मोक्षार्थी जन ना विघ्न निवारो।

शतपदी गुर्जर अनुवाद पृष्ठ १४९

ऐसी पच्चीस बातें जिनदत्तसूरि के लिये लिखी हैं जिसके अन्दर से केवल नमूने के तौर पर मैंने ८ बातें ऊपर लिखी हैं, जिससे पाठक समझ सकते हैं कि जिनदत्तसूरि की अन्य गच्छीयों के साथ कैसी भावना थी कि उन सब के गले कटवा डालने की चक्रेश्वरी देवी से प्रार्थना करते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि जिनवल्लभ ने महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की प्ररूपना कर अपना 'विधिमार्ग' नामक मत निकाला तथा उनके पट्टधर जिनदत्तसूरि ने स्त्रियों को जिन-पूजा निषेध कर उत्सूत्र प्ररूपना की। यही कारण था कि श्री संघ उनको संघ बाहर कर दिया जिससे रुष्टमान होकर उनका कुछ वश नहीं पहुँचा तब जाकर चक्रेश्वरीदेवी से प्रार्थना कर अपने तप्त हृदय को शीतल किया। ऐसा व्यक्ति अपने आप पुजाने के लिये मकान में पेटी रखवा कर पैसा डलवावे और उन पैसों से दादावाड़ी एवं पादु-

---

संवत् १२६३ में धर्मघोषसूरि ने प्राकृत भाषा का शतपदी नामक ग्रंथ रचा था जिसको सं० १२९४ में आचार्य महेन्द्रसिंहसूरि ने उस प्राकृत शतपदी से संस्कृत शतपदी लिखी, जिसको वि० सं० १९५१ में श्रावक रवजीदेवराज ने गुजराती अनुवाद छपाया।

काऐं स्थापन कराये इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि जहाँ दिवाला होता है वहाँ इस प्रकार कल्पित आडम्बर की जरूरत रहा ही करती है। कालान्तर में इधर तो जैन साधुओं का मरुधरादि प्रान्तों में विहार कम हुआ उधर खरतरों के यतियों ने जनता को धनपुत्रादिक का प्रलोभन देकर दादाजी की झूंटी २ तारीफें करके बहका दिया एवं उन बिचारे भद्रिक लोगों को धोखा देकर उनके द्रव्य से दादावाड़ी वगैरह बना लीं और वे लोग अपनायत के कारण जहाँ तक उन उत्सूत्रवदियों की कुटिलता को नहीं जानते थे वहाँ तक मानते भी थे. इससे क्या हुआ? कर्म सिद्धान्त से अज्ञात लोग धन पुत्रादि के पिपासु दादजी तो क्या पर भैरव भवानी और पीर पैगम्बर के यहाँ भी जाकर शिर झुका देते हैं तो इसमें दादाजी की क्या विशेषता है। परन्तु जब वे लोग ठीक तरह से समझने लगे कि इन उत्सूत्रवादियों के मुंह देखने से ही पाप लगता है एवं वे खुद उत्सूत्र की प्ररूपना करके संसार में डूबे हैं तो उनकी उपासना करने में सिवाय नुकसान के क्या हो सकता है? अतः आज वे दादावाड़ियें भूत एवं पिशाच के स्थानों की वृद्धि कर रही हैं। इतना ही क्यों पर जो लोग खरतर अनुयायी कहलाते हैं और धनपुत्रार्थ कई दादाजी के भक्त बन उनकी उपासना करते थे, उनको उल्टा फल मिलने से उनकी भी श्रद्धा हट गई है। शेष रहे हुये भक्तों की भी यही दशा होगी।

अब जैन सिद्धान्त की ओर भी जरा देखिये कि जैनसिद्धान्त खास कर्मों को मानने वाला है। पूर्वसंचित शुभाशुभ कर्म को अवश्य भुक्तना पड़ता है न इसको देव छुड़ा सकता है

न गुरु छुड़ा सकता है। इतना ही क्यों पर लौकिक सुख यानी धन सम्पत्ति के लिये देवगुरु की उपासना करना ये खास लोकोत्तर मिथ्यात्व का ही कारण है और जो लोग तीर्थंकर देवों की सेवा उपासना छोड़ उन उत्सूत्रवादियों की सेवा उपासना करते हैं तो वे उत्सूत्रवादी अपने संसार की वृद्धि से कुछ हिस्सा उन उपासकों को भी देंगे, इनके अलावा और क्या फल हो सकता है ?

अन्त में मैं अपने पाठकों को सावधान कर देता हूँ कि इस खर-तर मत के जाल से सदैव बच कर रहें। कई अर्सा तक तो यह लोग भद्रिकों को यह कह कर धोखा दिया करते थे कि आप दादाजी की मान्यता रखो आपको खूब धन मिलेगा। पर अब वे हिमायत करने वाले भी सफाचट हो बैठे हैं, अतः कर्म सिद्धान्त को मानने वाले इस प्रकार के धोखे में नहीं आते हैं। इन चमत्कार के लिये श्रीमान् केसरचन्द्रजी चोरडिया की लिखी 'खरतरों की बातें' नाम की पुस्तक मँगा कर पढ़िये कि जिससे आपको ठीक रोशन हो जायगा कि इन धूर्त लोगों ने किस २ प्रकार कल्पित बातें बना कर जनता को धोखा दिया हैं और अब इनकी किस प्रकार से कलई खुल गई और कैसे हँसी के पात्र बन गये हैं। खैर इस तीसरे भाग को मैं यहाँ ही समाप्त कर देता हूँ। यदि इस विषय में खरतर ज्यादा बकवाद करेंगे तो यहाँ भी मसाले की कमी नहीं है।

ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

## एक मछली समुद्र को गन्दा बना देती है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि खरतरमत क्लेश कदाग्रह एवं उत्सूत्र भाषण से पैदा हुआ है। इस मत के लोगों ने कई प्रकार से षड़यन्त्र रच कर जैनजगत को नुकसान पहुँचाया और आज भी पहुँचा रहे हैं, इतना ही नहीं पर वे राजा बादशाहों से भी नहीं चूके थे। उनके लिये भी कई प्रकार के षड़यन्त्र रच कर उनको नुकसान पहुँचाने के मिथ्या प्रयत्न किये थे। जैसे विक्रम की सतरहवीं शताब्दी में खरतरमत में एक मानसिंह नामका साधु था जो जिनसिंहसूरि नाम से कहलाया जाता था तथा वह अपने को ज्योतिष-विद्या में प्रवीण होना भी कहता था। उस मानसिंह ने बादशाह जहाँगीर के लिये एक ऐसा षड़यन्त्र रचा कि जिसके लिये बादशाह जहाँगीर को उसके विरुद्ध एक कठोर फरमान निकालना पड़ा। इतना ही क्यों पर बादशाह ने अपने राज में आने की भी मनाई कर दी थी। इन सब बातों को स्वयं बादशाह ने अपनी 'तुजुक जहाँगीरी' नामक किताब में लिखी थी जिसको मुन्शी देवीप्रसादजी जोधपुर वालों ने हिन्दी अनुवाद कर 'जहाँगीर नामा' नाम से ई० स० १९०५ में छपवाया है। वह किताब जोधपुर में मिलती है तथा इस समय मेरे सामने मौजूद भी है उस किताब के पृष्ठ ३०९ पर निम्नलिखित लेख मुद्रित है। जिसको पढ़ने से पाठक स्वयं सोच लेंगे कि एक गन्दी मछली तमाम समुद्र को कैसे गन्दा बना देती है अर्थात् एक कुलकलंक कुपात्र के जरिये शासन पर किस प्रकार कलंक लगता है।

## मानसिंह सेवड़ा

"बादशाह लिखता है कि सेवड़े हिन्दू नास्तिकों में से हैं जो सदैव नंगे सिर और नंगे पांव रहते हैं। उनमें कोई तो सिर और दाढ़ी मूछ के बाल उखाड़ते हैं और कोई मुंड़ाते हैं। सिला हुआ कपड़ा नहीं पहिनते। उनके धर्म का मूलमन्त्र यह है कि किसी जीव को दुःख न दिया जावे। बनिये लोग इनको अपना गुरु मानते हैं दण्डवत करते हैं और पूजते हैं। इन सेवड़ों के दो पंथ हैं। एक तपा दूसरा करतल ( खरतर )। मानसिंह करतर वालों का सरदार था और बालचन्द तपा का। दोनों सदा स्वर्गवासी श्रीमान् की सेवा में रहते थे। जब श्रीमान के स्वर्गारोहण पर खुसरो भागा और मैं उसके पीछे दौड़ा तो उस समय बीकानेर का ज़मीदार रायसिंह भुरटिया जो उक्त श्रीमान् के प्रताप से अमीरी के पद को पहुंचा था मानसिंह से मेरे राज्य की अवधि और दिन दशा पूछता है और वह कलजीभा जो अपने को ज्योतिष विद्या और मोहनमारण और वशीकरणादि में निपुण कहा करता था उससे कहता है कि इसके राज्य की अवधि दो वर्ष की है। वह तुच्छ जीव उसकी बात का विश्वास करके बिना छुट्टी ही अपने देश को चला गया। फिर जब पवित्र परमात्मा प्रभु ने मुझ निज भक्त को अपनी दया से सुशोभित किया और मैं

विजयी होकर राजधानी आगरे में उपस्थित हुआ तो लज्जित होकर सिर नीचा किये हुए दरबार में आया। शेष वृत्तान्त उसका अपनी जगह पर लिखा जा चुका है। और मानसिंह उन्हीं तीन चार महीने में कोढ़ी हो गया। उसके अंग प्रत्यङ्ग गिरने लगे। वह अब तक अपना जीवन बीकानेर में ऐसी दुर्दशा से व्यतीत कर रहा था कि जिससे मृत्यु कई अंशों में उत्तम थी। इन दिनों में जो मुझको उसकी याद आई तो उसके बुलाने का हुक्म दिया। उसको दरगाह में लाते थे पर वह डर के मारे रास्ते में ही जहर खाकर नरकगामी हो गया।

जब मुझ भगवद्भक्त की इच्छा न्याय और नीति में लीन हो तो जो कोई मेरा बुरा चेतेगा वह अपनी इच्छा के अनुसार ही फल पावेगा।

सेवड़े हिन्दुस्तान के बहुधा नगरों में रहते हैं। गुजरात देश में व्यापार और लेनदेन का आधार बनियों पर है इसलिये सेवड़े यहाँ अधिकतर हैं।

मन्दिरों के सिवाय इनके रहने और तपस्या करने के लिये स्थान बने हुये हैं जो वास्तव में दुराचार के आगार हैं। बनिये अपनी स्त्रियों और बेटियों को सेवड़ों के पास भेजते हैं लज्जा और शीलवृत्ति बिल्कुल नहीं है। नाना प्रकार की अनीति और निर्लज्जता इनसे होती है। इस-

लिए मैंने सेवड़ों के निकालने का हुक्म दे दिया है और सब जगह आज्ञापत्र भेजे गये हैं कि जहाँ कहीं सेवड़ा हो मेरे राज्य में से निकाल दिया जावे।"

इस लेख में एक तो लिखा है कि मानसिंह रास्ते में ही डर के मारे जहर खाकर मर गया और दूसरा लिखा है कि मेरे राज में आनेकी मनाई कर दी। इस विषय में खरतर मत वाले क्या कहते हैं ?

ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह नामक पुस्तक खरतरों की तरफ से हाल ही में मुद्रित हुई है जिसके पृष्ठ १५० पर जिनराजसूरि का रास छपाया है। उसमें लिखा है कि:—

"'बीकानेर' थी चलिया, मनह मनोरथ फलिया।
साधु तणइ परिवारइ, 'मेडतई' नयरि पधारइ ॥६॥
श्रावक लोक प्रधान, उच्छव हुआ असमान ।
श्रीगच्छनायक आयउ, सिगले आनन्द पायउ ॥७॥
तिहाँ रह्या मास एक, दिन-दिन बधतई विवेक ।
चलिवा उद्यम कीधउ, 'एक—पयाणउ' दीधउ ॥८॥
काल धर्म तिहाँ भेटइ, लिखत लेख कुण मेटई ।
'श्री जिनसिंह' गुरुराया, पाछा 'मेडतई' काया ॥९॥
सइंमुखि लीधउ संथारउ, कीधउ सफल जमारो ।
शुद्ध मनइ गहगहता, 'पहिलइ देवलोक' पहुता ॥१०॥"

इस रास में बादशाह मानसिंह ( जिनसिंहसूरी ) को बुलाता है और मानसिंह बीकानेर से रवाना हो आगरे जा रहा है।

मेड़ता में एक मास ठहर कर विहार किया एक मुकाम पर जाते ही उसकी काल से भेंट हुई अतः, वापिस मेड़ते आकर स्वयं संथारा (अनशन) करके काल को प्राप्त हुये। बात दोनों की मिलती जुलती है, शायद खरतरों ने गुरुभक्ति के कारण कुछ बात को सुधार के लिखी हो तो यह उनकी गुरुभक्ति प्रशंसनीय कही जा सकती है।

दूसरी बात बादशाह का हुकम अपने राज से सेवड़ों (खरतर मतियों) को निकाल देने का था। तब खरतरों के रास में लिखा मिलता है कि मानसिंह (जिनसिंहसूरि) के पट्टधर जिनराजसूरि आगरे गये और यतियों का विहार खुल्ला करवाया।

"अन्ये कितरेक देशे यति रै न सकते ते पण तिंवारे पच्छि रैता थया।"

अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वालों का लेख जैन सत्यप्रकाश वर्ष ३ अंक ४ पृष्ट १३५।

उपरोक्त शब्दों से यह सिद्ध हो सकता है कि जिनसिंह के समय खरतर यतियों का विहार बन्द हुआ था वह विहार जिनराजसूरि के समय वापिस खुला होगा।

'तुजुक जहांगीरी' का हिन्दी अनुवाद मुद्रित हुये को आज ३४ वर्ष हो गुजरे हैं जिसमें किसी खरतर ने इसका विरोध नहीं किया। शायद उनको ऊपर दिये हुये दो प्रमाणों का ही भय होगा? खैर! खरतरों के यति ऐसे ही थे और उन्होंने लज्जा के मारे ऊंचा मुंह नहीं किया पर जैन समाज को तो इस बात का सख्त विरोध करना था। क्या जैन भाई घर के घर में ही जंग मचाना जानते हैं कि थोड़ी २ बातों में जंग कर बैठते हैं? परन्तु ऐसे आक्षेप करने वालों के सामने चूं तक भी नहीं करते हैं, क्या अब भी जैन समाज में जीवन है कि वे इसका कुछ प्रतिकार करे।

## मंत्री कर्मचन्द बच्छावत

मंत्री कर्मचन्द जैन समाज में प्रख्यात मुत्सद्दियों में एक है। आपके जीवन के विषय कई खरतर यतियों ने रास वगैरह भी लिखे हैं क्योंकि ख० यतियों की इन पर पूर्ण कृपा थी। यही कारण है कि ख० यतियों के षड़यंत्र में इनका सहयोग रहता था। अतः कई ऐतिहासिक पुस्तकों में खर० यतियों के साथ साथ मन्त्री कर्मचन्द पर भी ऐसे २ लांछन लगाये गये हैं कि जिसको पढ़कर जैन समाज को दुःख हुये बिना नहीं रहता है पर बिचारा जैन समाज इसके लिये कर भी तो क्या सके, क्योंकि यह तो केवल घर शूरा अर्थात् घर के घर ही लड़ना झगड़ना जानता है जिस पुस्तक को छपे आज ३३ वर्ष हो गुजरा है किसी ने चूं तक भी नहीं किया। यदि जैन समाज इन बातों को नहीं जानता हो तो मैं आज एक दो उदाहरण आपके सामने रख देता हूँ।

"वि. सं. १६५२ में इनके मंत्री मेहता कर्मचन्द आदि कुछ लोगों ने इनको मारने की और इनके स्थान में इनके पुत्र दलपतसिंहजी को गद्दी पर बिठाने की साजिश की। परन्तु यह भेद खुल गया। इस पर कर्मचन्द भाग कर अकबर की शरण में चला गया और उसे रायसिंहजी की तरफ से भड़काने लगा। अकबर ने भी उसके कहने में आकर बीकानेर राज्य के भरथनेर आदि कई परगने राजकुमार दलपतसिंहजी को जागीर में दे दिये। इसी दिन से बाप बेटों में अनबन शुरू हुई। दलपतसिंहजी ने राज्य के कई परगनों पर कब्जा कर लिया। जिस समय वि. सं.

१६६४ में रायसिंहजी देहली गये उस समय कर्मचन्द मृत्युशय्या पर पड़ा था। अतः ये भी उससे मिलने को गये और उसका अन्तिम समय निकट देख बड़ा शोक[१] प्रकट किया। जब कर्मचंद मर गया तब उसके पुत्रों को भी इन्होंने बहुत कुछ दिलासा दिया।

इसी बीच वि. सं. १६६२ में बादशाह अकबर मर चुका था और जहांगीर देहली के तख्त पर बैठा था। परन्तु वह भी इनसे नाराज[२] हो गया, इसलिये यह लौट कर बीकानेर चले आये।"

भारत के प्राचीन राजवंश भाग तीसरा पृष्ट ३२७

मंत्री कर्मचंद को बीकानेर नरेश ने क्यों निकाल दिया इसका कारण तो आपने पढ़ लिया, पर मंत्री कर्मचन्द बादशाह अकबर के पास आकर क्या करता था और बादशाह अकबर उस पर क्यों प्रसन्न रहता था जिसके लिये एक किताब में लिखा है कि:—

---

१ कहते हैं कि कर्मचंद ने मरते समय अपने पुत्रों को समझा दिया था कि वे राजा रायसिंहजी के प्रलोभन में पड़ कर कभी बीकानेर न जावें। राजाजी ने जो शोक प्रकाशित किया है वह केवल इस कारण से है कि वे मुझ से बदला न ले सके और पहले ही मेरा अन्त समय निकट आ पहुँचा है।

२ इस नाराजी का कारण हम ऊपर एक मछली के लेख में लिख आये हैं कि राजा रायसिंह खरतरयति मानसिंह से जहाँगीर के राज की अवधि पूछता है इत्यादि परन्तु इस षडयंत्र का भेद जहाँगीर को मिल जाने से वह सख्त नाराज था।

"बादशाह के यहां नौ रोज के जलसों में मीनाबाजा लगता था जिसमें अमीरों की औरतें भी बुलाई जाती थ । पृथ्वीराज ने अपनी रानी चांपादेजी को वहां जाने से मना कर रखा था। मगर रायसिंहजी के दीवान करमचन्द के भेद दे देने से (जो बीकानेर से निकाला हुआ बादशाह के पास रहता था) बादशाह पृथ्वीराज से उनकी अंगूठी देखने के बहाने लेकर महल में चले गये। जहां से वह अंगूठी चांपादे रानी के पास पृथ्वीराज के नाम से भेज कर कहलाया कि तुमको मीनाबाजार में जाने की आज्ञा है। रानी धोखे में आकर चली गई।"

राजरसनामृत पृष्ठ ४०

'दीवान कर्मचंद के भेद दे देने से'— इस शब्द का क्या अर्थ हो सकता है ? क्या राठौर वीर पृथ्वीराज की रानी चम्पादेवी को बादशाह अकबर से मिलाने का उपाय कर्मचन्द ने बतलाया था जिससे बादशाह चम्पादेवी को मीना बाजार में बुला कर उससे मिला। यदि यह बात गलत है तो जैनसमाज को इसका जोरों से विरोध करना चाहिये।

मैंने ये दो बातें लिखी हैं इसमें मेरा आशय जैन समाज को चैतन्य कर उनको अपने कर्तव्य का भान कराना है।

इनके अलावा श्रीयुत छोटेलाल शर्मा फुलेरा वालों ने ई० सन् १९१४ में एक "जाति अन्वेषण प्रथम भाग" नामक किताब मुद्रित करवाई थी जिसके पृष्ठ १३२ से १३८ तक ओस-

वालों की जातियों के लिये ऐसा मिथ्या आक्षेप किया था कि ओसवालों में शूद्र जातियां जो भंगी ढेड़ चमार आदि भी शामिल हैं अतः इनको शूद्र जाति में ही दर्ज करना चाहिये। वह किताब मैंने सन् १९२६ में पीपाड़ में देखी तो पीपाड़ श्रीसंघ को उपदेश दिया और उन्होंने शर्माजी को एक नोटिस भी दिया। जवाब में शर्माजी ने अपनी भूल को स्वीकार कर ली इतना ही क्यों पर उन्होंने लिखा कि इस विषय में जो आप सत्य बात भेजेंगे तो मैं छापने को तैयार हूँ इत्यादि।

इस प्रकार जैनधर्म के सुयोग्य पुरुषों पर अन्य लोगों ने कई प्रकार के आक्षेप किये हैं, परन्तु जैनियों को घर के झगड़ों के अलावा इतना समय कहां मिलता है कि वे इस प्रकार साहित्य का अन्वेषण करके अपने पूर्वजों पर लगाये हुये लांछनों का मुंहतोड़ उत्तर दें। इतना ही क्यों पर कोई व्यक्ति इस प्रकार की बातें समाज के सामने प्रगट करे तो उल्टा अपमान समझ कर उस पर एक दम टूट पड़ते हैं परन्तु यह नहीं सोचते हैं कि यदि हम इन बातों का प्रतिकार न करें तो भविष्य में इसका क्या बुरा परिणाम होगा। खैर, मैंने तो इसको ठीक समझ कर ही जैनसमाज के सामने रक्खा है। अब इस पर योग्य विचार करना जैन समाज का कर्त्तव्य है।

॥ इति शुभम् ॥

श्री रत्नप्रभसूरीश्वर पाद कमलेभ्यो नमः

# खरतर मतोत्पत्ति भाग चौथा

खरतरमतोत्पत्ति भाग १-२-३ आपकी सेवा में उपस्थित कर दिये थे। जिनको आद्योपान्त पढ़ने से आपको ठीक विदित हो गया होगा कि खरतर मत की उत्पत्ति उत्सूत्र से ही हुई है और जो व्यक्ति एक उत्सूत्र भाषण करता है उसको और किस २ प्रकार अनर्थ करने पड़ते हैं जैसे व्यापारी लोग बदनीयती से अपनी एक बही से पन्ना निकालते हैं तब उसको और भी कई बहियों से पन्ना निकाल कर रद्दोबदल करना पड़ता है यही हाल हमारे खरतर भाइयों का हुआ है जिसके लिये यह चतुर्थ भाग आपके कर कमलों में रक्खा जाता है जिसको पढ़ने से आपको अच्छी तरह से रोशन हो जायगा कि इन उत्सूत्रवादियों ने जैन-धर्म में परम्परा से चली आई क्रिया समाचारी में कैसे एवं किस प्रकार रद्दोबदल करके विचारे भद्रिक जीवों को उन्मार्ग पर लगा कर संसार के पात्र बनाये हैं।

## १—नमस्कार मंत्र

१—श्रीभगवतीजी आदि सूत्रों के मंगलाचरण में "नमो-अरिहन्ताणं" कहा है और सब गच्छों वाले 'नमो' ही बोलते हैं पर

खरतरे 'णमोअरिहन्ताणं' कहते एवं लिखते हैं। नमो और णमो का अर्थ तो एक ही होता है, पर और गच्छवाले करें वैसे खरतर नहीं करते हैं। यह एक उनका हठ ही है।

## २—स्थापनाचार्य्य

२—जब श्रावक सामायिकादि धर्म-क्रिया करते हैं तब उस समय पुस्तकादि की स्थापना करते हैं और पंचेदिया की दो गाथा कहकर आचार्य के ३६ गुणों की स्थापना करते हैं तब खरतर तीन नवकार कहते हैं।

३—वर्तमान शासन के आचार्य सौधर्म गणधर हैं और उनकी ही स्थापना की जाती है पर खरतरे स्थापना पंच परमेष्टी की करते हैं। यह गलत है क्योंकि क्रिया गुरु आदेश से की जाती है।

४—आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने स्थापना कुलक में स्थापनाचार्य के लक्षण कहे हैं वह स्वाभाविक स्थापनाजी में ही होते हैं। पर खरतरे चन्दन के स्थापनाजी बना कर रखते हैं।

## ३—सामायिक

१—सामायिकलेनेके पूर्व क्षेत्रविशुद्धि के लिये श्रावक कोइर्यावही करना शास्त्र में लिखा है पर खरतर क्षेत्र विशुद्धि न करके पहिले सामायिक दंडक उच्चार कर बाद में इर्यावही करते हैं। यदि उनको पूँछा जाय कि सामायिक लेते समय सावद्य योगों का प्रत्याख्यान कर लिया फिर तत्काल ही कौनसा पाप लगा कि जिसकी इर्यावही की जाती है। शायद खरतरमत में सामायिक दंडक उच्चारना भी पाप माना गया हो कि सामायिक दंडक उच्चरते ही इर्यावही करना पड़े पर उल्टे मत के सब रास्ते ही उल्टे होते हैं।

२—सामायिक लेने के पूर्व अब्भुट्ठिओं कहने का विधान न होने पर भी खरतरों ने यह पाठ कहना शुरू कर दिया है।

३—साधु दीक्षा लेते हैं तब उनको नान्द के तीन प्रदक्षिणा करवाते हुये तीन बार सामयिक दंडक उच्चराया जाता है। जो जावजीव के लिये है। पर खरतरों ने श्रावक के इतरकाल की सामयिक भी तीन बार उच्चरानी शुरू कर दी। यह कैसी अनभिज्ञता है ?

४—सामायिक लेने के बाद 'पांगरणुसंदिसाहूँ' का किसी स्थान पर विधान न होने पर भी खरतरों ने यह नयी ही क्रिया कर डाली है।

५—सामायिक में स्वाध्याय के स्थान तीन नवकार कहा जाता है। पर खरतरों ने ८ नवकार कहना शुरू कर दिया। यह नये मत की नयी क्रिया है।

६—दो घड़ी की सामायिक में मन वचन काया के योगों से किसी प्रकार अतिचार लगा हो तो सामायिक पारने के पूर्व इर्या-वही करना खास जरूरी है। पर खरतरे नहीं करते हैं।

७—सामायिक पारते समय 'सामाइयवयजुत्तो' पाठ कहना चाहिये पर खरतरों ने एक नया ही पाठ बना रखा है जो भयवंदंसणभद्दो' कहते हैं।

## ४—पौषधव्रत

१—पर्वतिथि में श्रावक नियमित पौषधव्रत करे पर पर्व के अलावा अन्य दिन भी अवकाश मिले तो श्रावक पौषधव्रत कर सकते हैं पर खरतरों ने अज्ञानवश यह हठ पकड़ लिया है कि श्रावक पर्व के अलावा पौषधव्रत नहीं कर सकते। इसमें सिवाय

अन्तराय कर्मबन्ध के कोई लाभ नहीं है। कारण, सुखविपाक सूत्र में सुबाहुकुमार और ज्ञातासूत्र में नन्दन मिणियार ने एक साथ तीन दिन पौषध किये हैं। इसी प्रकार और भी बहुत से श्रावक तीन तीन दिन पौषधव्रत करते थे। इसमें शायद चौदस पूर्णिमा को तो पर्व तिथि कही जा सकती है पर साथ में प्रतिपदा अथवा त्रयोदशी तिथि भी आती थी! अतः पर्व के अलावा जब कभी श्रावक को अवकाश मिले उस दिन ही पौषधव्रत कर सकते हैं। ऐसा जैनागमों में कहा है।

२—श्रावक जैसे चोविहार तिविहार उपवास कर पौषधव्रत करते हैं वैसे ही एकासना आंबिल करके भी पौषध कर सकते हैं। श्रीभगवतीजी सूत्र में पोक्खली आदि अनेक श्रावकों के लिए खा पीकर पौषध करने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है फिर भी खरतरों ने एकासना कर पौषध करना निषेध कर दिया, जिससे सैकड़ों वर्षों से बिचारे खरतरों के विश्वास पर रहने वाले श्रावक इस प्रकार पौषधव्रत से वंचित ही रहे। इसके अन्तराय कर्म के भागी वही होंगे कि जिन्होंने ऐसी उत्सूत्र प्ररूपना की थी। आखिर अब खरतरे भी एकासना कर पौषध करने लग गये हैं जैसे हाल ही फलौदी के खरतर श्रावकों ने किया है।

३—पौषध के साथ में सामायिकदंडक भी उच्चारा जाता है और पौषध पारते हैं तब सामायिक भी पारा जाता है पर खरतरे आठ पहर का पौषध करते हैं तब पिछली रात्रि में पुनः सामायिक करते हैं और कहते हैं कि पौषध के साथ की हुई सामायिक में निद्रा आजाने से सामायिक का भंग हो जाता है। अतः हम पुन. सामायिक करते हैं पर यह केवल हठकदाग्रह ही

है। कारण, दोकरण तीनयोग से जैसे सामायिक है वैसे ही दोकरण तीनयोग से पौषध है तब निद्रा लेने से पौषधव्रत का भंग नहीं होता है तो सामायिक का कैसे भंग हो जाता है। यदि ऐसा ही है तो साधु के तीनकरण तीनयोग से सामायिक है और वे भी संथारा पौरसी भण के निद्रा लेते हैं, इतना ही क्यों पर उत्तराध्ययनसूत्र के २६ वें अध्याय में ऐसा भी कहा है कि साधु रात्रि के समय पहले पहर में स्वाध्याय करे, दूसरे पहर में ध्यान करे, तीसरे पहर में निद्रा ले और चौथे पहर में पुनः स्वाध्याय करे। अतः श्रावक पौषध में संथारा पौरसी भणाकर प्रमादनिवार्णार्थ निद्रा ले तो उसके न तो पौषधव्रत का भंग होता है और न सामायिकव्रत का ही भंग होता है।

४—पौषध में तीन वार देववन्दन करने का शास्त्रों में विधान है पर खरतरे दो वक्त ही देववंदन करते हैं।

## ५—प्रतिक्रमण

१—अतिचारों में सात लाख तथा अठारह पापों का विधान है पर खरतरों ने 'ज्ञान दर्शन' आदि नया ही विधान मिला दिया है। जिससे पुनरुक्ति दोष लगता है।

२—तीसरा आवश्यक की मुंहपत्ति का आदेश लेने का कहीं भी विधान नहीं है पर नये मत में यह एक नयी प्रथा कर डाली है कि तीसरा आवश्यक की मुंहपत्ति का आदेश मांगते हैं।

३—वंदितुसूत्र में 'तस्स धम्मस्स केवलि पन्नत्तस्स' यह पाठ प्रकट बोलने का है पर खरतर इस पाठ को स्पष्ट बोलने की मनाई करते हैं और धीरे से चुपचाप बोलते हैं।

४—सुबह के चैत्यवंदन और प्रतिक्रमण के बीच स्वाध्याय करने का विधान होने पर खरतर उस जगह स्वाध्याय नहीं करते हैं।

५—प्रतिक्रमणके अन्दर 'अड्ढाईजेसुदीवसमुद्देसु' कहने का विधान होने पर भी कई खरतर इस पाठ को नहीं कहते हैं।

६—क्षुद्रोपद्रव का काउस्सग्ग और इसके साथ में चैत्यवंदन का विधान नहीं है वह तो खरतर करते हैं और दुःखक्खओ कम्मक्खओ का विधान होने पर भी वह नहीं करते हैं।

७—दुःखक्खओ कम्मक्खओ का काउस्सग्ग के बाद लघु-शान्त कहने की परम्परा है खरतर नहीं कहते हैं पर उसको ही आगे चलकर कहते हैं।

८—प्रतिक्रमण में किसी आचार्य का काउस्सग्ग करने का विधान नहीं है तब खरतर अपने आचार्यों के काउस्सग्ग करते हैं फिर भी गणधर सौधर्म और जम्बु केवलि जैसे आचार्यों को तो वे भूल ही जाते हैं।

९—पक्खी चौमासी और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के देव-वंदन में जयतिहुण स्तोत्र जो आचार्य अभयदेवसूरि ने कारण-वसात् बनाया था चैत्यवंदन किया जाता है जिसमें

तइ समरंत लहंति झत्ति वर पुत्तकलत्तइ,
धण्णसुवण्णहिरण्णपुण्ण जण भुंजइ रज्जइ।
पिक्खइ मुक्ख असंखसुक्ख तुह पास पसाइण,
इअ तिहुअणवरकप्परुक्ख सुक्खइकुण महजिण॥

निवृत्ति भाव से प्रतिक्रमण में ऐसे श्लोकों को कहना एक विचारणीय विषय है।

## ६—असठ आचरण

१—जिस आचरण को असठ भावों से बनाया है और सब लोगों ने उसको स्वीकार किया है वह आचरण सकल श्रीसंघ को मानने योग्य है जैसे सिद्धाणं बुद्धाणं के मूल दो श्लोक हैं अभी पांच श्लोक कहे जाते हैं, जयवीयराय के दो श्लोक हैं अभी पांच श्लोक कहे जाते हैं पर खरतर सिद्धाणं बुद्धाणं के तो पांच श्लोक मानते हैं तब जयवीयराय के दो श्लोक कहकर तीन श्लोक छोड़ देते हैं।

२—वादीवैताल * शान्तिसूरि की बनाई वृहदशान्ति में खरतरों ने अपने मताग्रह से कई नये पाठ मिला दिये हैं जिसको किसी गच्छवालों ने मंजूर नहीं किया।

## ७—कल्याणक

१—भगवान् महावीर के चवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण एवं पांच कल्याणक मूलसूत्रों में एवं हरिभद्रसूरि के पंचासक में तथा अभयदेवसूरि की टीका में स्पष्टतया माने हैं पर जिनवल्लभसूरि ने वि० सं० ११६४ के आश्विनकृष्णत्रयोदशी के दिन चित्तौड़ में गर्भापहार नामक छट्ठे कल्याणक की उत्सूत्र प्ररूपना कर डाली जिसको खरतर आज पर्यंत मानते हैं और

---

*वादीवैताल शान्तिसूरि के बनाये चैत्यवंदन वृहद् भाष्य में जयवीयराय की दो गाथाओं के साथ 'वारिज्जइ' तथा 'दुःक्खक्खओ कम्मक्खओ' की गाथा कहना लिखा है। पूर्वोक्त आचार्य की बनाई वृहद्शांति तो खरतर मानते हैं पर उपरोक्त दो गाथा नहीं मानते हैं। वह नये मत की विशेषता है।

उस उत्सूत्र की पुष्टि के लिये आगमों के झूठ अर्थ कर भद्रिकों को बहकाते हैं। पर खास खरतरों के माननीय ग्रन्थ जिनदत्तसूरि रचित 'गणधरसार्द्धशतक' की वृहद्वृत्ति आदि को नहीं देखते हैं कि वे खुद क्या लिखते हैं जैसे कि—

१—चित्तौड़ में जाकर जिनवल्लभसूरि ने चामुंण्डा देवी को प्रतिबोध किया और महावीर के गर्भापहारनामक छट्ठे कल्याणक को प्रगट किया। "गणधर सार्द्ध शतक लघुवृत्ति"

२—जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड़ में कन्धा ठोककर छट्ठा कल्याणक को प्रकट किया। "गणधर सार्द्ध शतक वृहद्वृत्ति"

३—जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड़ में चतुर्मास किया वहाँ आश्विनकृष्णत्रयोदशी को महावीर के गर्भापहारनामक छट्ठे कल्याणक के अक्षर सूत्र में मिले अतः उन्होंने वीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की प्ररूपना की इत्यादि।

"गणधर सार्द्ध शतकान्तरगंत प्रकरण"

इत्यादि खरतरों के खास घर के प्रमाणों से ही सिद्ध होता है कि जिनवल्लभसूरि ने महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठे कल्याणक की नयी प्ररूपना की थी। यही कारण है कि उस समय के संविग्नसमुदाय और असंविग्नसमुदाय ने जिनवल्लभ को संघ से बहिष्कृत कर दिया था। इस विषय में देखो खरतरमत्तोत्पत्ति भाग तीसरा।

## ८—जिन प्रतिमा की पूजा

१—जैसा पुरुषों को प्रभुपूजा कर आत्मकल्याण करने का अधिकार है वैसा ही स्त्रियों को भी जिन-पूजा कर आत्म-

कल्याण करने का अधिकार है। और जैनागमों में प्रभावती चैलना, मृगावती, जयन्ति, सुलसा, सेवानन्दा, देवानन्दा, और द्रौपदी वगैरह महिलाओं ने परमेश्वर की द्रव्यभाव से पूजा की भी है पर प्रबल मोहनीयकर्म के उदय से वि० सं० १२०४ में जिनदत्तसूरि ने पाटण के जिनमंदिर में रक्त के छींटे देख स्त्रीजाति के लिये जिन पूजा करना निषेध कर दिया। आज करीब सात आठ सौ वर्ष हुए बिचारी खरतरियां जिन-पूजा से वंचित रहती हैं। इस धर्मान्तराय का मूल कारण जिनदत्तसूरि ही हैं।

फिर भी पुरुषों को तकदीर ही अच्छी थी कि जिनदत्तसूरि ने किसी पुरुष को आशातना करते नहीं देखा वरना वे तो पुरुषों को भी जिनपूजा करने का निषेध कर देते जैसे स्त्रियों को किया था अर्थात् शासन के एक अंग के बजाय दोनों अंग काट डालते।

## ६—तिथि क्षय एवं वृद्धि

१—तिथि का क्षय ❀ हो तो क्षय के पूर्व की तिथि का क्षय मानना चाहिये जैसे अष्टमी का क्षय हो तो उसके पूर्व की तिथि सातम का क्षय समझ कर सातम को अष्टमी मान कर पर्वाराधन करना चाहिये तथा पूर्णिमा का क्षय हो तो तेरस का

❀ 'यथा क्षय पूर्वा तिथि कार्या वृद्धा कार्या तथोत्तरा

(उमास्वाति वाचक)

'अह जइ कहवि नलब्भई। तताउ सूरुग्गमेण जुत्ताउ
ताअवर विद्ध अवरावि। हुज्जनहुपुव्व तव्विद्धा'।
एवं हीणचऊदसी। तेरसेजुत्तानदोसमावइई।
सरणंगउविराया। खोआणंहोइजहपुज्जो।

क्षय करके दूसरे दिन चौदस और तीसरे दिन पूर्णिमा का पर्व-आराधन करना चाहिये।

यदि तिथि की वृद्धि हो तो पूर्व की तिथि को वृद्धि करके दूसरी तिथि को पर्वतिथि मानना चाहिये जैसे अष्टमी दो हों तो पहली अष्टमी को दूसरी सातम समझना और पूर्णिमा दो हों तो तेरस दो समझना ऐसा शास्त्रकारों का स्पष्ट मत है, पर खरतरों का तो मत ही उलटा है कि वे अष्टमी का क्षय होने से अष्टमी का पर्व नौमी को करते हैं कि जिसमें अष्टमी का अंश मात्र भी नहीं रहता है तथा अष्टमी की वृद्धि होने से पहली अष्टमी को पर्व मानते हैं फिर भी विशेषता यह है कि चौदस का क्षय होने पर पाक्षीक प्रतिक्रमण पूर्णिमा का करते हैं जो खास तौर अपनी मान्यता से भी खिलाफ है।

## १०—पर्व

१—अधिक मास को शास्त्रकारों ने कालचूला एवं लुनमास माना है। यदि श्रावण मास दो हों तो प्रथम श्रावण को लुनमास समझ कर सांवत्सरिक प्रतिक्रमण भाद्रपद में ही किया जाता है तथा भाद्रपद दो हों तो प्रथम भाद्रपद को लुनमास समझ कर दूसरे भाद्रपद में ही सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना चाहिये पर खरतरे कार्तिक, फाल्गुन और आसाढ़ मास दो हों तो चतुर्मासिक प्रतिक्रमण दूसरे कार्तिक, फाल्गुन और आसाढ़ में करते हैं तथा आश्विन एवं चैत्रमास दो हों तो आंबिल की ओलियां दूसरे आसोज एवं दूसरे चैत्र मास में करते हैं। पर श्रावण भाद्रपद मास दो हों तो दूसरा श्रावण या पहिले भाद्रपद में सांवत्सरिक

प्रतिक्रमण करते हैं। यह एक शास्त्रों की अनभिज्ञता या मिथ्या हठ ही कहा जाकता है।

यदि खरतर भाई कहते हैं कि आषाढ़ चर्तुमासी से ५० वें दिन सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना चाहिये। जब श्रावण दो हों तो दूसरे श्रावण और भाद्रपद दो हों तो पहिले भाद्रपद में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने से ही ५० दिन माने कहा जा सकता है पर वे भाई समवायांगजी सूत्र के पाठ को नहीं देखते हैं कि आषाढ़ चातुर्मासिक से ५० दिन तथा कार्तिक चातुर्मास के ७० दिन पूर्व सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना चाहिये। जब दूसरे श्रावण तथा पहिले भाद्रपद में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किया जाय तो पिछले ७० दिनों के बजाय १०० रह जायगा अतः एक तरफ आज्ञापालन करने को जाते हैं तो दूसरी तरफ जिनाज्ञा भंग की गठरी सिर पर उठानी पड़ती है। इसमें भी विशेषता यह है कि पूर्व के ५० दिन अध्रुव हैं और पिछले ७० दिन ध्रुव हैं। अतः अब किसकी रक्षा करना जरूरी है ?

अगर हमारे खरतर भाई कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़, आश्विन और चैत्र मास दो होने पर पहिले मास को लुनमास मानकर सब धर्मकृत्य दूसरे मास में करते हैं तो इसी मुआफिक दो श्रावण भाद्रपद होने पर पहिले को लुनमास एवं कालचूला मान लें तो पहिले के ५० दिन भी रह सकते हैं और पिछले ७० दिन भी रह सकते हैं।

जैसे सोलह दिनों का पक्ष होने पर भी चौदस को पक्षी प्रतिक्रमण कर उसको पक्ष ही कहते हैं। ११८ एवं १२२ दिन का चौमासी प्रतिक्रमण कर उसे चौमासी प्रतिक्रमण कहते हैं।

इसी भांति एक अधिक मास को भी लुनमास समझ सांवत्सरिक प्रतिक्रमण कर लेना चाहिये। विशेष खुल्लासा देखो 'प्रवचन परीक्षा हिन्दी अनुवाद' नामक ग्रंथ में।

## ११—प्रत्याख्यान

१—श्रावक शाम को तिविहार के पच्चक्खान करते हैं उनके लिये रात्रि में कच्चापानी का त्याग नहीं होता है पर खरतर कच्चा पानी पीने वालों को दुविहार के ही प्रत्याख्यान करवाते हैं और कहते हैं कि तिविहार के प्रत्याख्यान करने वालो को रात्रि में अचित पानी पीना चाहिये, फिर ऐसे भी कुतर्क करते हैं कि तिविहार उपवास में भी कच्चा पानी पीना खुल्ला रहता हो तो तिविहार उपवास में भी कच्चा पानी क्यों नहीं पी लिया जाय ? पर उन जैनागमों के अनभिज्ञों को इतना भी ज्ञान नहीं है कि जिस पानी को पीना खुल्ला रक्खा जाता है और उसमें पानी के छः आगार कहा जाता है वह अचित पानी पीता है और जिसको पानी के छः आगार नहीं कहा जाता है वह सचित पानी पी भी सकता है।

२—श्रावकों के तिविहार उपवास तथा एकासना आंबिल के प्रत्याख्यान में पानी के छः आगार❀ कहना लिखे होने पर भी खरतर पानी के आगार नहीं कहते हैं।

---

❀'अचित भोइयाणं सड्ढाण मुणीणंहुत्ति आगारा पाणस्सय छच्चेव उनिसिनो तिविहे सचित्ताण' ॥ लघुप्रवचनसारोद्धार कर्त्ता चन्द्रसरि मलधार

तह तिविह पच्चक्काणे भणंतिअ पाणग छ आगारा दुविहारे अचित भूइणो तहयफासुजले'। प्रत्याख्यान भाष्य कर्त्ता देवेन्द्रसूरि

## १२—भक्ष्याभक्ष्य

शास्त्रों में पानी में पकाये हुये पदार्थों अर्थात् सचलित होने से उसे अभक्ष्य बतलाया है। उसको खरतर लोग खा जाते हैं और संगरियो आदि में किसी स्थान पर विद्वल नहीं कहा है उसको विद्वल बतलाते हैं। इस विषय को विस्तार से देखो प्रवचनपरीक्षा नामक ग्रन्थ में।

## १३—श्रावक की प्रतिमा

श्रावक को प्रतिमावाहन का किसी सूत्र में निषेध नहीं किया है पर खरतरों ने पंचारा का नाम लेकर श्रावक को प्रतिमावाहन करने का निषेध कर दिया पर यह विचार नहीं किया कि पंचम आरा में जब साधु साधुपना भी पालन करता है जो श्रावक के प्रतिमावाहन से कई गुणा कष्ट परिसह सहन करना पड़ता है तो फिर श्रावक प्रतिमावाहन क्यों नहीं कर सकेगा? यदि कहो कि श्रावक से इतने परिसह सहन नहीं हो सकते हैं तो सोचना चाहिये कि साधु होते हैं वह सब श्रावक के घरों से ही होते हैं यदि वे श्रावक परिसह सहन करने में इतने कमजोर होंगे तो वे साधुत्व को कैसे पालन कर सकेंगे। खरतरों को तो ज्यों त्यों कर शासन के अंग प्रत्यंगों को काटना था।

## १४—मासकल्प

१—वृहत्कल्पादि सूत्रों में साधुओं के नौकल्पी विहार का अधिकार लिखा हुआ मिलता है। अतः शीतोष्ण काल के आठ मास के आठ कल्प और चतुर्मास के चारमास का एक कल्प एवं नौकल्प कहा है। पर खरतरों ने पंचमारा का नाम लेकर

मासकल्प का भी निषेध कर दिया। इसमें मुख्य कारण क्षेत्र-ममत्त्व और जिह्वा की लोलुपता ही है।

## १५—उपधान

१—शास्त्रकारों ने साधुओं के योगद्वाहन और श्रावकों के उपधान तप का शास्त्रों में प्रतिपादन किया है पर खरतरों ने योगद्वाहन को तो माना है पर उपधान का निषेध कर दिया था फिर भी कृपाचन्द्रसूरि खरतर होते हुये भी अपने पूर्वजों के निषेध किये उपधान करवाये थे।

१६—**पूर्वाचार्य्यों** ने आंबिल के लिये लिखा है कि जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट एवं तीन प्रकार के आंबिल होते हैं। अतः आंबिल में दो द्रव्य एवं दो से अधिक द्रव्य[1] भी खा सकते हैं पर खरतरों ने आंबिल में दो द्रव्य का ही आग्रह कर रखा है।

१७—**जिनवल्लभसूरि** कुर्चपुरागच्छ के चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे और उन्होंने गुरु को छोड़ अपना विधि मार्ग नामक एक नया मत चलाया था पर खरतर कहते हैं कि जिनवल्लभसूरि अभयदेवसूरि के पट्टधर थे किन्तु यह बात बिल्कुल गलत है। कारण अभयदेवसूरि अपनी विद्यमानता में वर्द्धमान सूरि को अपने पट्टधर बना गये थे। अतः जिनवल्लभ अभयदेव सूरि के पट्टधर नहीं हो सकता है, दूसरा अभयदेवसूरि शुद्ध चन्द्रकुल की परम्परा में थे तब जिनवल्लभसूरि थे कुर्चपुरीया गच्छ के चैत्यवासी साधु था।

---

[1] मलधारगच्छिय हेमचंद्रसूरि के शिष्य चंद्रसूरि ने लघुप्रवचन सारोद्धार ग्रन्थ में कहा है कि आंबिल में दो द्रव्य के अलावा और भी कई द्रव्य खा सकते हैं।

१८—जगचिन्तामणि के चैत्यवंदन में भी खरतरों ने न्यूनाधिक कर दिया है जैसे कि—

"सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अठ्ठ कोडीओ ।
बत्तिसय बासिआइं, तिअलोए चेइए वंदे ॥
पनरस कोडिसयाइं, कोडी बायाल लक्ख अडवन्ना ।
छत्तीस सहस असिइं, सासयबिंबाइं पणमामि ॥"

इसके बदले में खरतरों ने दो गाथा इस प्रकार लिख दी हैं।

सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्ठ कोडीओ ।
चउसय छायासीया, तिअलोए चेइए वंदे ॥
वन्दे नवकोडिसयं, पणवीसं कोडि लक्ख तेवन्ना ।
अट्ठावीस सहस्सा, चउसय अट्ठासिया पड़िमा ॥"

१९—और भी कई ऐसी बातें हैं कि खरतरे परम्परा से विरुद्ध करते हैं जैसे कि—

१—प्रतिक्रमण के आदि में 'इच्छाकारेण संदिसह भगवंन्' कहना शास्त्रों में कहा है तब खरतर इसको नहीं कहते हैं।

( शुद्ध समाचारी प्रकाश पृष्ट १८५ )

२—प्रतिक्रमण में साधु [1]आयरिय उवज्जाये तीन गाथा कहते हैं परन्तु खरतर नहीं कहते हैं।

( शुद्ध समाचारी पृष्ट १८६ )

१ 'खामणाणिमित' पडिक्कमणणिवेदणथ्थं वदंति ततो आयरियमादी पडिक्कमणथ्थमेवदंसेमाणा खामेति । उक्तं च आयरिय उवज्झाए सीसे साहम्मिए कुल गणेवा' इत्यादि गाथात्रिक पढ़ने को कहा है।

## १६—खरतरमत

१—आचार्य जिनेश्वरसूरि और अभयदेवसूरि शुद्ध चान्द्र-कुल की परम्परा में हैं ऐसा खुद अभयदेवसूरि ने अपनी टीका में लिखा है, पर आधुनिक खरतर इन आचार्य को खरतर बनाने का मिथ्या प्रयत्न कर रहे हैं। देखो खरतर मतोत्पत्ति भाग १—२—३।

२—यह बात निश्चित हो चुकी है कि खरतर मत की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण हुई है, पर खरतरलोग कहते हैं कि वि० सं० १०८० में पाटण के राजा दुर्लभ की राज-सभा में जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों के आपस में शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें जिनेश्वरसूरि खरा रहने से राजा ने उनको खरतर विरुद दिया इत्यादि, पर यह बात बिल्कुल जाली एव बनावटी है कारण खास खरतरों के ही ग्रन्थ इस बात को झूठी साबित कर रहे हैं जैसे कि:

१—खरतरों ने जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय वि० सं १०२४ का लिखा है पर उस समय न तो जिनेश्वरसूरि ने अवतार लिया था और न राजा दुर्लभ का जन्म ही हुआ था।

२—अगर खरतर कहते हों कि वि० सं० १०२४ लिखना तो हमारे पूर्वजों की भूल है पर हम १०८० का कहते हैं तो भी बात ठीक नहीं जचती, क्योंकि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि० सं० १०७८ तक ही रहा ऐसा इतिहास स्पष्ट जाहिर कर रहा है।

३—खरतरों ने उद्योतनसूरि, वर्द्धमानसूरि को भी खरतर लिखा है इससे भी जिनेश्वरसूरि को खरतर विरुद मिलना मिथ्या

साबित होता है क्योंकि वर्द्धमानसूरि जिनेश्वरसूरि के गुरु और वर्द्धमानसूरि के गुरु उद्योतनसूरि थे जब कि उद्योतनसूरि और वर्द्धमानसूरि ही खरतर थे तो जिनेश्वरसूरि के लिये खरतर विरुद मिलना लिखना तो स्वयं मिथ्या साबित हो जाता है।

३—खरतर आप अपने को चान्द्रकुल के होने बतलाते हैं पर खरतरों की कई पट्टावलियों से वे चन्द्रकुल के होने साबित नहीं होते हैं, उन पट्टावलियों से एक पट्टावली केवल नमूना के तौर पर यहां उद्धृत करदी जाती है।

पट्टावलियों में सौधर्माचार्य से सुहस्तीसूरि तक के नाम तथा उद्योतनसूरि के बाद के नाम तो ठीक मिलते झुलते हैं पर सुहस्ती से उद्योतनसूरि तक के बीच के आचार्यों की नामावली में इतना अन्तर है कि किसी ने कुछ लिख दिया तो किसी ने कुछ लिख दिया है। इस समय खरतरों की बारह पट्टावलियां मेरे पास मौजूद हैं, पर उसमें शायद् ही एक पट्टावली दूसरी पट्टावली से मिलती हो। देखिये नमूना।

## चरित्रसिंह कृत (२) गुर्वावली

| | | |
|---|---|---|
| १ आचार्य सुहस्ती | ८ ,, गुप्त | १५ ,, वज्र |
| २ ,, शांतिसूरि | ९ ,, समुद्र | १६ ,, रक्षित |
| ३ ,, हरिभद्र | १० ,, मंगु | १७ ,, दुर्वलिका पुष्प |
| ४ ,, स्यामाचार्य | ११ ,, सुधर्म | १८ ,, नन्दी |
| ५ ,, संडिलसूरि | १२ ,, हरिवल | १९ ,, नागहस्ती |
| ६ ,, रेवतीमित्र | १३ ,, भद्रगुप्त | २० ,, रेवती |
| ७ ,, धर्माचार्य्य | १४ ,, सिहंगिरि | २१ ,, ब्रह्मद्वीपि |

| | | |
|---|---|---|
| २२ ,, संडिल | २६ ,, संभूतिदीन | ३० ,, जिनभद्र |
| २३ ,, हेमवन्त | २७ ,, लोकहित | ३१ ,, हरिभद्र |
| २४ ,, नागार्जुन | २८ ,, दुष्यगणि | ३२ ,, देवाचार्य |
| २५ ,, गोविन्द | २९ ,, उमास्वाति | ३३ ,, नेमिचन्द्रसूरि |
| | | ३४ ,, उद्योतनसूरि |

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृष्ठ २१८

यह पट्टावली शांतिसूरि शाखा की है न कि चान्द्रकुल की। एक दूसरी शान्तिसूरि की पट्टावली है जिसमें भी नामक्रम नहीं मिलते हैं। ऊपर की पट्टावली के नम्बर ११ तक ठीक हैं परन्तु वहां से आगे के नाम ठीक नहीं मिलते हैं। देखिये नं० १२-१३ १४ के आचार्य ऊपर की पट्टावली में हैं तब दूसरी पट्टावली में पूर्वोक्त नाम नहीं हैं। इसी प्रकार शान्तिसूरि की शाखा की जितनी पट्टावलियां खरतरों ने लिखी हैं वे सब इस प्रकार गड़-बड़ वाली हैं।

दूसरे कई खरतरों ने चान्द्रकुल शाखा के नामों से भी पट्टा वलियां लिखी हैं उसमें भी नामों की बड़ी गड़बड़ है कि जैसे शान्तिसूरि की शाखा के नामों की पट्टावलियों में है। इससे स्पष्ट पाया जाता है कि खरतर मत एक समुत्सम पैदा हुआ मत है और इसका अस्तित्व जिनवल्लभसूरि के पूर्व कहीं भी नहीं मिलता है जैसे बिना बाप के पुत्र से उसके पिता का नाम पूछो तो वह जी चाहे उसका ही नाम बतला सकता है। यही हाल खरतरों का है। खरतरों की पट्टावलियों के विषय में मैं एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखकर थोड़े ही समय में आपकी सेवा में उपस्थित कर दूँगा। पाठक थोड़े समय के लिये धैर्य रखें।

## खरतरमतोत्पत्ति विषय एक और भी प्रमाण

पं० हीरालाल हंसराज जामनगर वालों ने अपने "जैनधर्म नो प्राचीन इतिहास भाग बीजो" नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १८ पर महोपाध्याय धर्मसागरजी महाराज की 'प्रवचन परीक्षा' का प्रमाण देते हुए गुजराती में खरतर-गच्छ के विषय में जो कुछ लिखा है उसका सार यह है कि *जिनदत्तसूरि के बनाए हुए गणधर सार्द्ध-शतक नामक ग्रन्थ पर जिनपतिसूरि के शिष्य सुमतिगणि ने बृहद्वृत्ति रची है जिसके एक पैरेग्राफ में जिनवल्लभसूरि का वर्णन है जिसमें जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड़ के किले में रह कर भगवान महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठे कल्याणक की प्ररूपना की इत्यादि। दूसरे पैरेग्राफ में जिनदत्तसूरि के विषय में लिखा है कि जिनदत्तसूरि का स्वभाव ऐसा था कि उनको कोई भी व्यक्ति प्रश्न पूछता तो वे मगरूरी के साथ उत्तर देते थे; इसलिये उनको लोग खरतर - खरतर कहने लग गये थे; अतः खरतर मत की उत्पत्ति वि० सं० १२०४ में जिनदत्तसूरि से हुई।

इस विषय में पाश्चात्य संशोधकों का भी यही खयाल है कि खरतर मत की उत्पत्ति वि० सं० १२०४ में जिनदत्तसूरि से ही हुई है जैसे कि:—

---

*गणधर सार्द्धशतक ग्रन्थ के रचयिता जिनदत्तसूरि थे और उनका स्वर्गवास वि० सं० १२११ में हुआ तब उस पर बृहद्वृत्ति निर्माण-कर्ता सुमति गणि के गुरु जिनपतिसूरि का आचार्य पद का समय वि० सं० १२२३ का है, अतः उस मूल ग्रन्थ और उस पर बृहद्वृत्ति का समय निकटवर्ती कहा जा सकता है।

## डाक्टर बुलर अपनी रिपोर्ट पृष्ठ १४९ पर लिखता है कि:—

"The Kharatara sect then arose according to an old Gatha in Samvat 1204. Jinadatta was a proud man, and even in his pert answers to others mentioned by Sumatigani, pride can be clearly detected. He was therefore called Kharatara by the people, but he gloried in the new appellation and willingly accepted it."

## एशियाटिक सोसायटी की रिपोर्ट पृष्ठ १३९ पर लिखा है कि:—

In this Dharamasagar tries to prove that it owed its rise not to Jineshwara the pupil of Vardhmana in Samvat 1024 as is commonly believed, but to Jinadatta in Samvat 1204.

"जैनधर्म नो प्राचीन इतिहास भाग बीजो पृष्ठ १८"

बाबू दीनदयाल 'दिनेश' द्वारा
आदर्श प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर में छपी